गण-स्वरूप ।

संख्या	नाम	लक्षण	रूप	संक्षिप्त नाम	देवता	फल	उदाहरण	शुभ
१	मगण	तीनों गुरु	S S S	म	पृथ्वी	श्री	मायावी	शुभ
२	नगण	तीनों लघु	I I I	न	दिवस	सुख	नगर	,,
३	भगण	आदि गुरु	S I I	भ	शशि	यश	भारत	,,
४	यगण	आदि लघु	I S S	य	वरुण	धनद	यशोदा	,,
५	जगण	मध्य गुरु	I S I	ज	भानु	शोक	जलेश	अशुभ
६	रगण	मध्य लघु	S I S	र	अग्नि	जारक	रामजी	,,
७	सगण	अन्त गुरु	I I S	स	वायु	भ्रम	सरिता	,,
८	तगण	अन्त लघु	S S I	त	व्योम	शून्य	तालाब	,,

साहित्य-परिचय।

लेखक—

पं० रामशंकर त्रिपाठी।

प्रकाशक—

ओसवाल प्रेस।

१६, सीनागोग स्ट्रीट (हमामगली)

कलकत्ता।

सम्वत् १९८१ वि०

प्रथमावृत्ति १०००] [मूल्य १)

मुद्रक—
महालचन्द वयेद
ओसवाल प्रेस
१६, सीनागोग स्ट्रीट,
कलकत्ता।
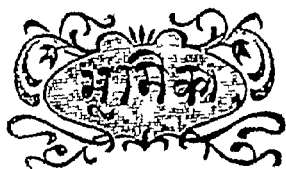
भूमिका ग्रन्थ परिचय के लिये लिखी जाती है किन्तु साहित्य-परिचय जैसे क्षुद्र ग्रंथ की भूमिका ही क्या ? जो स्वयं ही परिचयात्मक है। तथापि रूढ़ि कि अनुसार दो शब्द लिखना आवश्यक है यह ग्रन्थ यथा-संभव संक्षेप में लिखा गया है, और साहित्य—काव्य के सभी महत्व-पूर्ण अंगोंपर थोड़ा बहुत प्रकाश डालनेका उद्योग किया गया है। सफलता हुई है, या नहीं, यह प्रयत्न अच्छा हुआ है, या बुरा, लेखन शैली सदोष है, या निर्दोष, और विषय विवेचन आदि कैसा हुआ है ? इसके निर्णय करनेके अधिकारी तो समालोचक महानुभाव गण ही हैं। हमने तो इस पुस्तकको लिखकर पांच सवारों में अपना नाम लिखा दिया है, पाठक महाशय यदि चाहें, तो इसके लिए हमें धन्यवाद दें। हम उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे। हाँ, पुस्तकके संबन्धमें दो एक बातोंकी सूचना देना आवश्यक है। पहिली बात यह है, कि इसमें मौलिकताको खोजना अपना समय और शक्ति नष्ट करना है। कारण, अनेक बारके पिष्ट-पेषित विषयोंका ही परि-

चय दिया गया है। लेखन-शैली में भी कोई नूतनता नहीं है, और पुस्तक उस समय प्रकाशित हो रही है, जबकि हिन्दी कविता साहित्यमें युगान्तर, हो रहा है। ऐसी दशा में हमारा यह प्रयत्न अनेक महानुभावों को रुचि-कर नहीं होगा, यह हम जानते हैं। तथापि अब भी एक ऐसा दल है, जो कविता-संबधी नवीन परिवर्त्तनोंका आदर करता हुआ भी प्राचीन कविताओं पर यथेष्ट श्रद्धा रखता है, उससे परिचित होना चाहता है, ऐसेही महाशयोंके लिए यह पुस्तक लिखी गई है। इस नव-युगमें भी कविता-क्षेत्रसे सर्व सम्मति से रस, अलंकार, और छन्द आदि का बहिष्कार नहीं हुआ है, अतएव इस पुस्तकसे साहित्यमें प्रवेश करनेके इच्छुक अन्य महाशयों को भी यथेष्ट सहायता मिलेगी। यह पुस्तक मैंने पहले पहल लिखी है। और बहुत जल्दी-सिर्फ १५ दिन-में। छपी भी जल्दी में ही है। अतएव विचारोंकी, भाषाकी और प्रूफ़ आदिकी अनेक भूलें होंगी। यदि समालोचक महाशय इन भूलों को क्षम्य समझें, तो मेरा सौभाग्य! नही, तो "कर कुठार आगे यह शीशा"। और दूसरी बात यह है कि, यद्यपि आजकल ऐसे माल की साहित्य-मंडी में खपत कम है; तथापि बा० महालचन्द जी बयेद और बा० बालचन्दजी नाहटा ने जिस उत्साह और तत्परता से इस पुस्तक को प्रकाशित किया है, उसके लिए वे हमारे धन्य वादार्ह हैं। पुस्तक उनकी रुचिके अनुसार हम सर्वाङ्गसुन्दर नहीं बना सके, इसका हमें खेद है। इन महाशय-द्वयके अतिरिक्त इस

पुस्तक के लिखने में हमें मित्रवर पं० गुलाबरत्नजी वाजपेयी, पं० चन्द्रिकाप्रसादजी मिश्र, पं० सिद्धनाथजी शुक्ल और प० शिवशेखरजी द्विवेदी से बड़ी मदद मिली है। एतदर्थ हम उक्त सज्जनोंके कृतज्ञ हैं।

"ओसवाल प्रेस"
१६, सीनागोग स्ट्रीट।
कलकत्ता।
दीपमालिका, १६८१
सोमवार

रामशङ्कर त्रिपाठी

सूचना।

इस पुस्तकके पृ० २६ और ३० के शीर्षक में भूलसे "द्वादश हाव और व्यभिचारी या संचारी भाव" छप गया है, वहाँ "रस-निरूपण" होना चाहिए। तथा पृ० ७१ के फुट नोट में 'घनसार, का अर्थ चंदन लिखा गया है, वहाँ 'कपूर' होना चाहिए। और भी जहा २ पर एकाध मात्रा या वर्णकी गलती दृष्टि-दोषसे रह गई हो, वहां २ पाठक महोदय सुधार कर पढ़नें की कृपा करें।
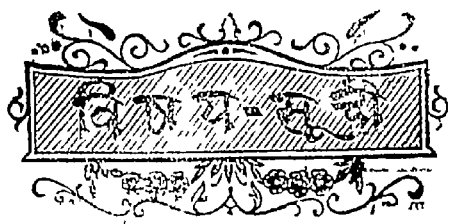
विनीत—

लेखक।

विषय-सूची

साहित्य परिचय ।

कविता क्या है ?

कविता क्या है ? यह बड़ा जटिल प्रश्न है । संसार की किसी भी भाषा में आज तक कविता की कोई ऐसी परि-भाषा निश्चित नहीं हुई, जिसको कमसे कम उसी एक भाषा के समस्त विचार-शीलों कवि कोविदों ने निर्विवाद मान लिया हो । साधारण मनुष्यों की बात जाने दीजिये, जो इन विषयों में अपनी बुद्धि को कष्ट देना नहीं चाहते, और दूसरों की निश्चित की हुई परिभाषाओं से सन्तुष्ट हो जाते हैं । किन्तु काव्य-कला निष्णात विद्वानों को, कभी दूसरे की निश्चित की हुई कविता की परिभाषा से सन्तोष, नहीं हुआ । उनको उन सब लक्षणों में कहीं कुछ कमी और कही कुछ अधिकता प्रतीत हुई है । एतदर्थ समय २ पर ऐसे अनेक विद्वानों ने, बड़े परिश्रम और योग्यता से इस जटिल समस्या के समा-धान करने के लिये, अनेक प्रयत्न किये हैं । नई २ परिभाषायें निश्चित की हैं, और की हैं उनकी लम्बी २ युक्ति-तर्क-बहुल

व्याख्यायें। किन्तु अन्त में फिर वही "ढाक के तीन पात" वाली लोकोक्ति चरितार्थ हुई। विभिन्न भाषाओं के अनेक विद्वानों द्वारा निश्चित की हुई परिभाषाओ की संख्या कम नहीं है। और ये परिभाषायें, बहुत अंशों में कविता के वास्तविक रूप की झांकी कराने में सहायक भी होती है। किन्तु कोई एक सर्व मान्य परिभाषा कम से कम किसी एक भाषा के लिये भी निश्चित नही हुई। सब के लिये कौन कहे। निकट भविष्य में इसके होने की आशा भी नही है, सुदूर भविष्य की भगवान् जानें। मुख्य बात है 'भिन्न रुचिर्हिलोकः' विद्वानो की विचार-सरणी एक नहीं है। रुचि-वैचित्र्य भी कम नहीं है। फिर लोग एक ही विचार-बिन्दु से कैसे काम चला सकते हैं? और फिर 'मुंडे २ मतिर्भिन्ना' भी तो है। कहने का अभिप्राय यह है, कि इस जटिल-प्रश्न पर शताब्दियो से बड़े २ विद्वानो ने जो विचार किया है। जो निष्कर्ष निकाला है, वह बड़े महत्व का है। उन लक्षणोंमे से यहां पर कुछ उपस्थित कर देनेसे सम्भव है, साधारण पाठको की जिज्ञासा-वृत्ति को कुछ लाभ पहुचे। यह भी सम्भव है, कि उन विद्वानो के दिखलाये हुए मार्ग पर चलकर वह कविता की कसौटी निर्मित कर सकें।

कविता के स्वरूप पर भारतीय पंडितो की सम्मतियां।

वाग्देवतावतार श्रीमम्मटाचार्य ने काव्य प्रकाश में लिखा हैं।

"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि"

अर्थात् शब्द और अर्थों का दोष रहित और गुण-सहित होना, कहीं पर अलङ्कारों का होना और कहीं पर न होना कविता का लक्षण है।

(२) सरस्वतीकंठाभरण में महाराज भोजदेव लिखते हैं:—

निर्दोष गुणवत् काव्यमलकारैरलङ्कृतम्।

रसात्मकम्

अर्थात् जो वाक्य निर्दोष, गुण, अलङ्कार और रसात्मक हो वह काव्य है।

(३) चन्द्रालोक में कविवर जयदेवजी लिखते हैं:—

निर्दोषा लक्षणवती सरीति गुण-भूषिता।

सालकार रसानेकवृत्तिर्वा काव्यनामभाक्।

अर्थात् जो वाक्य निर्दोष लक्षणवती रीति गुण, अलङ्कार और रस सहित हो, उसे काव्य कहते हैं।

(४) रसगङ्गाधर प्रणेता पण्डितराज जगन्नाथजी की राय है:—

रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्।

अर्थात् रमणीय—चमत्कृत—अर्थ का प्रकट करने वाला शब्द काव्य है। बा० जगन्नाथ दास बी० ए० रत्नाकर ने अपने साहित्य-रत्नाकर ग्रन्थ में इसको इस तरह लिखा है:—

'होय वाक्य रमणीय जो काव्य कहावे सोय'।

(५) साहित्य दर्पण में महापात्र विश्वनाथजीने लिखा हैः—

रसात्मकंवाक्यम् काव्यम् ।

अर्थात् जिस वाक्य से रस अर्थात् लोकोत्तर आनन्द प्राप्त हो उसे काव्य कहते हैं ।

साहित्य दर्पणकार के मतसे पण्डितराज जगन्नाथ के मत का कोई विशेष वैषम्य नहीं है । फिर भी यह मत अधिक व्यापक है। और आधुनिक अधिकांश साहित्य-मर्मज्ञ इसी मत का अधिक आदर करते हैं । हिन्दी के प्राचीन आचार्योंने भी उपर्युक्त मत—विशेषों का ही अनुगमन किया है, अतएव उनके मतों का उद्धरण देना बाहुल्य मात्र होगा ।

कविता के स्वरूप पर पश्चात्य पडितों की सम्मतिया ।

(१) कविता पद्यमय निबन्ध है, (जानसन) ।

(२) कविता वह कला है, जिसमें कल्पना-शक्ति विवेककी सहायक होकर सत्य और आनन्द का परस्पर संम्मिश्रण करती हैं । (मिल्टन)

(३) 'आदर्श चित्रण को ही कविता कहते हैं, (आरस्तू)

(४) "कविता विश्व के गुप्त सौन्दर्य भांडार की झांकी कराती है"। (शेली)

(५) शान्त एकान्त क्षण में अनुभूत मनोभावना ही काव्य है। (वर्ड्सवर्थ)

मौलाना हसरत मोहानीने एक शेरमें लिखा है'—

शेर दर असल है वही 'हसरत,

सुनते ही दिल मे जो उतर जाये।

वस्तुत यह छोटी सी किन्तु बडे काम की परिभाषा है। कविता परखने की अच्छी कसौटी है। कविता हृदय का विषय है। वह एक हृदय से निकलती है, और दूसरे हृदयतक जाने की शक्ति रखती हैं। वह कविता कविता ही नहीं, जिसमे हृदय के लहा-लोट करने को शक्ति न हो। जो एक नईबात न कहे। जिसके पढते या सुनते ही हृदय में एक नई भावना का सचार न हो जाय। जो हृदय में गुदगुदो न पैदा कर दे। हृदय को लोको-त्तरानद से आह्लादित करना कविता का पहला कार्य है। और श्रवण को सुख देना दूसरा। कुछ लोग पद्यबद्ध छन्दों को ही कविता मानते हैं, वस्तुत. बात ऐसी नही हैं। यद्यपि कविता का छन्दोबद्ध होना आवश्यक है। किन्तु सभी पद्यमयी पंक्तियो में कविता का होना आवश्यक नही है। यही कविता और पद्य का भेद है। उपर्युक्त परिभाषाओं के अनुसार कविता गद्य में भी हो सकती है, किन्तु यहां हमें पद्य ही अभीष्ट है।

नोट—साधारणत: काव्य के दो भेद होते हैं, श्रव्य और दृश्य। दृश्य काव्य नाटक को कहते हैं, और काव्यकी सर्व गुण युक्त कथा को श्रव्य काव्य कहते हैं।

कविता की आवश्यकता।

बहुत पुराने ज़माने से आज तक, विद्वानों का एक ऐसा दल चलाआता है, जो कविता की आवश्यकता—उसकी उपयोगिताको स्वीकार नहीं करता। उन महानुभावों की सम्मति हैं, कि कविता से न देश को और न समाज को ही किसी प्रकार का लाभ पहुच सकता है। उनका यह भी कथन है, कि कविता कवि-कल्पनामात्र है, वह वास्तव से बहुत दूर है। भले ही उससे क्षण भर का मनोरञ्जन हो जाय, इससे अधिक कुछ नहीं। अज्ञानान्धकार में जब लोग प्रकृति के रहस्यों से अनभिज्ञ रहते हैं, उसकी प्रत्येक वस्तु से उनके हृदय में कौतूहल उत्पन्न होता रहता है, तब भले ही प्रकृति सम्बन्धिनी कवि कल्पना से ऐसे लोग सन्तुष्ट हो जाय, किन्तु ज्यों ज्यों ज्ञान का आलोक फैलता जाता है, मनुष्य की जिज्ञासा-वृत्ति बढ़ती जाती है, नित नये वैज्ञानिक आविष्कार होते रहते हैं, तब ऐसी अवास्तव कल्पनायें, ज्ञान के विकाश के मार्ग में साधक न होकर बाधक ही हो जाती हैं। समाज को—सभ्य-समाज को कविता की आवश्यकता नहीं है, आदि २। दूसरा पक्ष कहता है, कि महाशयो! बात ऐसी नहीं है। आप लोग ग़लत रास्ते पर हैं। प्रकृति के रहस्यज्ञान के लिये, समाज का कल्याण करने के लिये कविता और विज्ञान दोनों की आवश्यकता होती है, केवल विचार-दृष्टि का अन्तर है। कविता हृदय का विषय है, और विज्ञान मस्तिष्क का। दोनों एक ही कार्य को भिन्न २ रीतियों से करते हैं। अवश्य ही दोनों के कार्य-क्षेत्र—

अधिकार सीमा पृथक पृथक है। अतएव कविता से, विज्ञान प्रभाकर के तीव्रालोक में या अन्धकार आच्छादित युग में किसी प्रकार की हानि की सम्भावना नहीं है। अथवा यों कहिए, जब तक जगत् में हृदयवानों का अभाव, या हृदय-हीनों का राज्य नहीं हो जाता, तब तक कविता का अपलाप किसी प्रकार न हो सकेगा।

कविता से लाभ, कवि और समाज दोनों को होता है। काव्य शास्त्र के आचार्य मम्मट ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ काव्यप्रकाश में कविता के प्रयोजन इस प्रकार बतलाये हैं।

"काव्य यशसेऽर्थ कृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निर्वृतये कान्तासम्मितयोपदेश युजे॥

अर्थात् काव्य के ६ प्रयोजन हैं (१) यश की प्राप्ति (२) धनकी उपलब्धि (३) व्यवहार का ज्ञान (४) अमंगल का नाश (५) आनन्द की प्राप्ति, और (६) कान्ता (प्रिया) के समान उपदेश का लाभ।

कविता से कवि को लाभ।

(१) यश की प्राप्ति,

लोकोक्ति है 'कीर्तिर्यस्य सजीवति, संसार में ऐसे मनुष्यों का अभाव है, जो यश नहीं चाहते। यशस्वी होने के लिये, कीर्तिमान कहलाने के लिए लोग आतुर रहते हैं। चाहते हैं, कि उनकी

कीर्ति संसार मे सदा अक्षुण्ण और अक्षय रहे। इसके लिए लोग तन, मन और धन सब कुछ अर्पण कर देते हैं, संसार में धर्म के नाम से, परोपकार के नाम से जो कुछ कार्य होता है, उस सब की तह में यश की लालसा छिपी हुई है। यह वृत्ति आधुनिक नही है, किन्तु मनुष्य के आदिकाल से है। और शायद अनन्त कालतक मौजूद रहेगी। मनुष्य जीवन का इतिहास इस से भरा हुआ है। राजा हरिश्चन्द्रने राज पाट छोड़ इतना दुर्दशा-ग्रस्त होना स्वीकार क्यों किया?- कीर्ति के लिए। राजा दशरथ ने प्रतिज्ञा भंग नहीं की, परन्तु प्राण दे दिए—कीर्ति के लिए। विशाल इतिहास के पृष्ठोंमें ऐसे ही असंख्य, अगणित उदाहरण भरे पड़े हैं। यह सर्वजन-काम्य कीर्त्ति अन्यों के लिए दुर्लभ होने पर भी, कवियो के लिये बिल्कुल सुलभ है। इस पर विशेष लिखना व्यर्थ है। कुछ देश और विदेश के कवियो का नाम लिख देना ही पर्याप्त होगा।

जब तक रामायण और महाभारत रूपी कीर्त्ति मौजूद है, तब तक कौन कह सकता है? कि वाल्मीकि और व्यास मृत हैं। कवि-कुल-पति कालिदास की शकुन्तला, भवभूति का उत्तर रामचरित, माघ का शिशुपाल वध, भारवि की किरातार्जुनीय, श्रीहर्ष का नैषधीयचरित, बाण की कादम्बरी, और सुबन्धु की वासवदत्ता आदि उन महाकवियो की कीर्त्ति ससार में अक्षय बनाये रखने के लिये पर्याप्त हैं। महाकवि सूरदास, तुलसीदास, केशवदास, देव,-बिहारी, भूषण और मतिराम आदि की कीर्त्ति उनके कविता ग्रन्थों

की सहायतासे आज भी अक्षुण्ण है। पाश्चात्य कविशिरोमणि, शेक्सपियर, होमर, बायरन, चासर, शेली, और वर्ड्सवर्थ आदि की कीर्त्तिलता अमर है। इस वैज्ञानिक युग मे—बीसवीं सदी में भी, भारतवर्ष के गौरव कवीन्द्र रवीन्द्र संसार में स्तुत्य हैं। प्रशंसार्ह हैं। और उनकी कीर्त्ति अमर है। आश्चर्य की बात यह है, कि इन कवियों ने अपने ग्रन्थों जिनका वर्णन कर दिया है, वे भी अमर हो गये हैं। रामायण और महाभारत के ही प्रभाव से राम और कृष्ण घर २ पूजे जाते हैं। कितने राजा और महाराजा, सम्राट और चक्रवर्त्ती इस अनन्त काल-सागर की तरगो में कहां मिल गए, यह कौन कह सकता है? पर बिहारीलाल की कृपा से मिर्जा राजा जयसिह का नाम अमर है। अतएव कवियों की यश प्राप्ति में तो किसी को अणुमात्र भी सन्देह न होना चाहिये। किसी ने सत्य ही कहा है:—

ते धन्यास्तेमहात्मान तेषा लोके स्थिरं यशः।
ये निबद्धानि काव्यानि येच काव्येषु कीर्त्तिताः।

(२) द्रव्य की प्राप्ति।

ससार में द्रव्य की भी बडी महिमा है। इसकी प्राप्ति के लिये न मालूम कितने सत् और असत् कार्य, लोग किया करते हैं। इसी के लिये आये दिन घोर पैशाचिक काण्ड होते रहते हैं। एक शब्द में कहना चाहें, तो कह सकते हैं, कि संसार द्रव्यवानों की मुट्ठी में है। आज इस 'बीसवी सदी' में—इस भौतिकता के युग,

में इसके महत्वका विशेष परिचय देना मूर्खता है। छोटे बड़े सभी 'द्रव्य प्राप्ति' के फेरमें पड़े हुए हैं। ऐसी दुर्लभ वस्तु भी कवियों को सहज प्राप्त है। प्राचीनों में वाण, श्रीहर्ष आदि और मध्य युग के केशव, विहारी, भूषण और पद्माकर आदि का नामोल्लेख पर्याप्त है। इन लोगों को अपरिमित द्रव्य की प्राप्ति हुई थी।

कविता से समाज को लाभ।

(३) व्यवहार का ज्ञान।

यह निर्विवाद सत्य है, कि कवियों की अनुभव भरी हुई वाणियों से समाज का व्यवहार ज्ञान खूब बढ़ जाता है। कविता पर परिस्थिति का प्रभाव पड़ना अनिवार्य है। कविता समाज को, व्यक्ति को तत्काल ही सावधान भी कर देती है। यद्यपि नीति और कविता एक नहीं है। और व्यवहार ज्ञान का कार्य नीति के 'अधिकार' में है, तथापि कवि-गण इस अंश मे नीतिकार का ही कार्य करते हैं। रामायण और महाभारत आदि इसके ज्वलन्त प्रमाण है। विषयासक्त और राज-कार्य से उदासीन राजा जयसिंह को सावधान करने के लिये विहारीलाल का निम्न लिखित दोहा काफी था।

नहि पराग नहिं मधुर मधु, नहि विकाश यहि काल।

अली कली ही में विन्धो, आगे कौन हवाल।

कविता के दो रूप हैं, (१) शक्ति और दूसरी कला। मनुष्य

को सावधान करने के लिये, समाज का व्यवहार ज्ञान बढ़ाने के लिये, और शिक्षा देने के लिये कविता में 'शक्ति' का प्रयोग किया जाता है।

(४) अमङ्गल नाश।

जिस कविता का उद्देश्य ही है, सत्य, शिव और सुन्दर की उपासना। उससे समाज का कल्याण होगा इसमे आश्चर्य की बात कौन सी है ?

(५) आनन्द की प्राप्ति।

संसार में आनन्द न चाहनेवालों का सर्वथा अभाव है। यद्यपि कौन किस प्रकार का आनन्द चाहता है ? यह बतलाना कठिन है। किन्तु यह ध्रुव सत्य है, कि लोग आनन्द, चाहते है। गृही और विरक्त, संसारी और संन्यासी, योगी और भोगी सभी आनन्द चाहते हैं, गृही का आनन्द कहां है ? उसकी गृहस्थी में। विरक्त का आनन्द कहा है ? उसकी विरक्ति में। संसारी का आनन्द कहां है ? उसके संसार में। योगी का आनन्द कहां है, उसके योग में। और भोगी का आनन्द कहा है ? उसके भोग में। अभिप्राय यह है, कि प्राणी स्वाभाविक ही आनन्द चाहते हैं, किसी की प्रेरणा से नहीं। ऐसा आनन्द जो ध्रुव हो, जो सत्य हो। मनुष्य की आदि काल से यही अभिलाषा है, यही ध्येय है और यही लक्ष्य है। ऐसे आनन्द की प्राप्ति के लिये लोग न मालूम कितने २ प्रयत्न करते हैं, लोक के आनन्द के लिये और परलोक में आनन्द के लिये ही, अनेक धर्मों का अनु-

ध्यान होता है। अनेक प्रकार के कष्ट सहे जाते हैं। आनन्द के लिये ही जैनो के लिये अहिंसा है। और आनन्द के लिये ही वाम-मार्गियों का बलिदान भी है। परलोक में आनन्द के लिये, अप्सरा और सिंहासन की प्राप्ति के लिये, दान दक्षिणा, याग यज्ञ, और जप तपादि हिन्दुओं का कष्ट सहन है। और इसीके लिये "मयेअतहर और हूरो गिलमा" के लिये ही मुसलमानों का विधर्मियों के प्रति निष्ठुर और पैशाचिक उत्पीडन है। सारांश यह है, कि संसार आनन्द की खोज में व्यस्त है, वह आनन्द, वह स्वर्गीय पदार्थ वह दुर्लभ वस्तु, कविता से आसानी से मिल सकती है। प्राच्य और पाश्चात्य सभी कवियों और समालोचकों की राय में, कविता का उद्देश्य आनन्द प्रदान है। तत्काल आनन्दमय कर देना है। फिर कौन हृदय-हीन यह निष्ठुर वाक्य कहता है, कि समाज को कविता की जरूरत नहीं है—

(६) कान्ताके समान उपदेश।

संसार में यह वात बहुत प्रसिद्ध है, कि "हितं मनोहारि च दुर्लभंवचः" किन्तु कविता देवी के प्रभाव से उनके राज्य में यह मुश्किल नहीं है। उनके यहां न तो (१) प्रभु सम्मित, उपदेश होता है। और न 'सुहृत् सम्मित, यहां तो सीधा साधा, हृदयको लोट-पोट करदेने वाला कान्ता के समान उपदेश होता है। और उप-देशो का उल्लंघन हो सकता है, किन्तु कान्ताके समान उपदेश का उल्लंघन? और युगों में चाहे होता भी रहा हो, किन्तु इस कान्ता प्रधान युग में उसका उल्लंघन? शिव! शिव! उसकी तो चर्चा

भी पाप है। यद्यपि यह अनेक कविता-कोविदों का सिद्धान्त है, कि कविता एक कला है। अतः उसके लिए उपदेश-मय होना आवश्यक नहीं है। यह नीतिकार का काम है, और उसी के लिए इसको छोड़ देना चाहिए। उपदेश के फेर में पड़ने से कला की अभिव्यक्ति नहीं हो सकेगी। विश्वमें आदर्श प्रतिष्ठा करने के लिए कवि को अपनी कविता का उपयोग नहीं करना चाहिए। फिर वह आदर्श चाहे कितना ही महान् क्यों न हो। आदर्श नित्य परिवर्त्तनशील है। आदर्श किस युगमें किस प्रकार विकसित होकर जगत् के हृदय का आकर्षण अपनी ओर करता है, उसके अनुसार कवि को अपनी प्रतिभा का परिचालन न करना चाहिए। अतएव इस दल की सम्मति के अनुसार कविता की कसौटी उपयोगिता वाद नहीं है। कला की अभिव्यक्ति है। किन्तु तथापि समाज के मंगल साधन में कवि की कविता परम सहायक हो सकती है। क्योंकि वह उस उद्देश्य का सत्य सौन्दर्य प्रकट करने में समर्थ हुआ है।

दूसरे दलकी राय है, कि नहीं, कविता को उच्च भावो का उद्बोधक होना चाहिए। और धर्म-जीवन का सहायक होना चाहिए। कवि की वाणी प्रभाव-पूर्ण होना चाहिए, जो संसार में विशिष्ट प्रकारका आदर्श स्थापित कर दे, लोगों की रुचि परिमार्जित कर दे और मनुष्य की चित्त-वृत्तियों को विकसित कर दे। अस्तु। प्रकारान्तर से दोनों ही कविता का 'कान्ताके समान, उपदेश करना मानते है। रूखे, सूखे नीति नियमों के उपदेश का उतना प्रभाव

नहीं पड़ता। जितना कि कविता के इन हृदय के लोट-पोट कर देने वाले सरस शब्दों का। कविता का आदर्श स्थापित करना चाहे उद्देश्य न हो, तथापि समाज पर कविता का खूब प्रभाव पड़ता है। अतएव कविता का समाज-हित-कारिणी और मनो-मोहिनी होने मे किसी प्रकार का सन्देह नही हो सकता।

कविता-निर्माण।

अब प्रश्न यह है, कि क्या प्रत्येक मनुष्य कविता निर्माण कर सकता है? अथवा कविता-निर्माण करने के लिए किन २ गुणों और शक्तियों की आवश्यकता है? हमारे प्राचीन आचार्यों ने इसका जो उत्तर दिया है, वह यह है, कि कविता निर्माण के लिए तीन बातों की आवश्यकता है।

(१) शक्ति या प्रतिभा।

'प्रतिभा' ईश्वर प्रदत्त, कविता का बीजरूप संस्कार विशेष है। कवियों के लिये प्रतिभा का होना अनिवार्य है। कविता-क्षेत्र मे इसके बिना काम ही नहीं चल सकता। यों तो सभी काम करने के लिये शक्ति की आवश्यकता हुआ करती है। प्रतिभा के लोगो ने २ भेद माने हैं।

(१) सहजा (ईश्वर प्रदत्त) (२) उत्पाद्या (निपुणता जन्य) इनमे सहजा श्रेष्ठ है, इसका थोड़े ही परिश्रम से विकाश होता है। प्रतिभावान् की कविता सरस और आदरणीय होती है। परन्तु जिसको यह शक्ति नही प्राप्त है, वह अभ्यास

और सगति से बहुत कुछ कर सकता है। परिश्रम कभी व्यर्थ नहीं जाता। फिर 'प्रतिभा' है या नहीं, इसका पहिले निर्णय हो ही कैसे सकता है? अतएव परिश्रम करना दोनों का आवश्यक है। उपयुक्त क्षेत्र के विना बीज की वृद्धि नही होती है। जो प्रतिभावान् है, उसकी प्रतिभा का विकाश अल्प आयास से हो जायगा। और जिनके प्रतिभा नहीं है, कठिन परिश्रम करने पर वे भी कविता के लिये आवश्यक निपुणता प्राप्त कर सकते हैं।

(२) निपुणता।

वह है जिसके द्वारा शब्द एवं अर्थ के सारा सार का निर्णय किया जाता है। इसका दूसरा नाम व्युत्पत्ति भी है। निपुणता प्राप्त करने के लिये शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता होती है। प्राचीन कवियों की कविताएं, धर्म ग्रन्थ, इतिहास पुराण, काव्यांग आदि का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। विना इस ज्ञान के कविता तादृश उत्कृष्ट नहीं होती। प्रकृति-निरीक्षण की भी आदत डालना चाहिये। इसी एक गुण के अभाव से लोग आधुनिक अधिकाश हिन्दी कविताओं को कवित्व हीन कहते हैं। हिन्दी कवियों में है भी यह सब से बड़ा दोष। जिस कवि से बातें कीजिये अपना ही डींग मारता है। लेकिन जब उसकी कृति देखिये, तो बस 'हरे मुरारे! हरे मुरारे!

(३) अभ्यास।

अभ्यास निपुणता का सहायक है। इसकी महिमा से सभी

परिचित हैं। 'करत करत अभ्यास के जडमति होत सुजान, रसरी आवत जात ते शिल पर होत निशान' कोई ऐसा कार्य नहीं है जो अभ्यास से सिद्ध न हो जाता हो। अतएव भावी कवियो को काव्य-कर्मज्ञों की संगति से कविता-निर्माण का अभ्यास करना चाहिये। प्रतिभा, निपुणता और अभ्यास के संयोग से जो कविता बनेगी, वह अति उत्तम होगी। इन तीनों का सम्मिलित ज्ञान कविता-निर्माण करने में सहायक होता है। कुछ लोग 'कविता के लिये केवल प्रतिभा को ही काफी समझते हैं। और किसी चीज़ की ज़रूरत नहीं मानते हैं, आजकल हिन्दी-काव्य जगत् में सर्वत्र प्रतिभा का ही बोल बाला है। जिससे बातें कीजिये, वही चट से किसी अंग्रेजी वाक्य का उल्था सुना देगा, ,कवि पैदायशी होते हैं, बनाये नहीं जाते। बात ठीक है। किन्तु हमारा विचार है, कि 'प्रतिभा' बीज, 'निपुणता' खाद् और अभ्यास पानी के सदृश है। जैसे बीज पानी पाकर अंकुरित हो उठता है। और खाद् पाकर हरा भरा हो जाता है। उसी प्रकार की अवस्था यहां भी है। तीनो गुण एक दूसरे के सापेक्ष हैं। इसीलिये आगे के कतिपय पृष्ठों में कविता के लिये अत्यन्त आवश्यक रस अलङ्कार और छन्द आदि का परिचय दिया गया है। यह नवीन कविओं की 'निपुणता' बढ़ाने में सहायक होंगे। इन गुणों को प्राचीन काव्य-मर्मज्ञों ने आवश्यक माना था। और आजकल भी अधिकांश काव्य-मर्मज्ञ आवश्यक मानते हैं। कुछ लोग कविता को अलङ्कार आदि से मुक्त अतएव निराभरण

रखना चाहते हैं, उनकी राय में 'सहज-सुन्दरी' के लिये आभूषणों की आवश्यकता नहीं है। भाषा-सौष्ठव की जरूरत नहीं है। ध्वनि आदि व्यर्थ हैं। छन्दों का व्यवहार और तुक मिलाना आदि झंझट है। अच्छी बात है। जो लोग ऐसा करना चाहते हैं, वे शौक से ऐसा करें। उनके लिये यह प्रयत्न नहीं है। और उनसे झगड़ना भी नहीं है।

कविता की भाषा।

कुछ लोगों की सम्मति है, कि भाषा का उद्देश्य भाव का प्रकाश करना है। जो भाषा जितनी सरल, जितनी स्वच्छ होगी। भाव उस भाषा में उतनी ही स्पष्टता से विकसित हो उठेगा। भाव मुख्य वस्तु है। भाषा भाव की वाहिका अथवा अनुगत दासी-मात्र है। भाषा के आडम्बर—उसके शब्द जाल में पड़कर यदि भाव छिप जांय, तो उस भाषा की सार्थकता क्या है? इसी लिए वे लोग कहते हैं, कि बोलचाल की भाषामें व्यक्त किया हुआ भाव अधिक प्रभाव-पूर्ण और अधिकजन-बोध्य होगा। बोलचाल की भाषा सहज, सरल, प्राण-स्पर्शी, द्योतनापूर्ण और जीवनी शक्ति पूर्ण है। वह स्वाभाविक है, अतएव उसके अतिरिक्त यदि और किसी मनगढ़न्त भाषा का आश्रय लिया जायगा, तो भाषा की भाव-प्रकाशिका—द्योतना शक्ति, नष्ट हो जायगी। कुछ लोग इसीलिए कविता में भाव को ही सर्वस्व मानते हैं, जिससे सर्व-साधारण भी उससे परिचित हो सकें, लाभ उठा सकें। वे

यह भी कहते हैं कि जैसे सहज-सुन्दरी को सौन्दर्य बढ़ाने के लिए कृत्रिम सहायक की जरूरत नहीं है, वैसे ही, भाव-पूर्ण कविता में, भाषारूपी वस्त्रों की उत्कृष्टता आवश्यक नहीं है। अतएव इस युग में भाषा-सौष्ठव के आदर की आवश्यकता नहीं है। उस रिक्त स्थान को सरलतादेवी को दे देना चाहिए। एक समय था, जब लोग भाषा के पीछे पड़े रहा करते थे, अन्ततः उसी को लेकर क्रीडा किया करते थे। किन्तु अब तो "भाव अनूठो" चाहिए, का जमाना है। भाषा-सौष्ठव का नहीं।

थोड़े शब्दों में कविता की भाषा के सम्बन्ध में एक पक्ष का मत ऊपर विवृत किया गया है।

इनके अतिरिक्त दूसरे दल की राय है, कि कविता को सर्व साधारण के उपयुक्त बनानेवाला भाव निःसन्देह महत् है। उदार सहृदयता का परिचायक है, आजकल सभी जगह प्रजातंत्र का डंका बज रहा है, कविता क्षेत्र ही उससे वंचित क्यों रहे? किन्तु सब से पहले यह कह देना आवश्यक है, कि साहित्य आपामर सर्वसाधारण के लिये नहीं है। साहित्य में जो कुछ है, असाधारण है, सरल भाषा में व्यक्त करने से ही वह सर्व-जन उपभोग्य नहीं हो सकेगा। कारण कवि की अनु-भूति और सर्व साधारण की अनुभूति एक नहीं है। फिर सर्व साधारण की मनस्तुष्टि करना ही साहित्य का एकमात्र उद्देश्य नहीं है। नित्य के व्यवहार की भाषा में एक प्रकार की त्वरा या रूक्षता अधिक होती है। दैनिक जीवन में हमलोग स्थूल प्रकृति के दास होते हैं,

उस जीवन में भाव के अनुभव करने के लिये और भाषा से परिचित होने के लिये न अवसर ही मिलता है और न प्रेरणा ही होती है। उस समय भाव के स्वरूप और भाषा के स्वरूप में क्या आनन्द—क्या सौन्दर्य और क्या महत्त्व हो सकता है, वह हम लोग नहीं जानते। अतएव उस भाषा में चिन्ता का स्थैर्य, भाव की संहति और अनुभूति का गभीरत्व ढूंढना व्यर्थ है। कविता के लिये आवश्यक गम्भीर, दृढ़संवद्ध और तापसभाव-पूर्ण भाषा वह नहीं है। कवि की अनुभूति प्रकट करने के लिये ही, कविता की भाषा की सृष्टि हुई है। वह कृत्रिम नहीं है। कविता का मुख्य उद्देश्य, केवल जिसकिसी प्रकार भाव का प्रकाशित करना ही नहीं है। किन्तु सुन्दर भाव से—महीयान् भाव से भाव का विकसित करना है। इसके अतिरिक्त शब्द का निजस्व गुण भी हैं, वह है उसकी—आकर्षण शक्ति। उसमें इतना असर है, कि वह वन के मृगो को भी मुग्ध कर लेती है। मनुष्यों की कौन कहे। केवल शब्द की मधुर-ध्वनि में जब इतना प्रलोभन है। तब यदि उन शब्दों में अर्थ-चातुरी भी भरी हो, तो फिर पूछना ही क्या है। भाषा शब्दों का समूह है। अतएव उस के माधुर्य और लालित्य, आदि गुण किसीप्रकार त्याज्य नहीं हो सकते।

कवि अपना सन्देश शब्दों द्वारा देता है, शब्दों में विचार प्रकट कर सकनें की सामर्थ्य है। शब्द प्रतिनिधि कवि के विचारों को ज्यों की त्यों प्रकट कर देते है। विचार-प्रकट कर सकना कविता-

वाक्य का प्रधानगुण होना चाहिये, बिना इसगुण के काम नहीं, चलता। और शब्द माधुर्य आदि भाषा के गुण इस मुख्य गुण के सहायक हैं। अच्छे वस्त्रों में कुरूप का दोष भी छिप जाता है। फिर उन्हीं वस्त्रों द्वारा यदि सहज-सुन्दरी के अंग आवृत कर दिये जांय, तो निःसन्देह सौन्दर्य की वृद्धि होगी। हीरा की अंगूठी रखने केलिए पात्र भी वैसा ही चाहिये। सरलता के चक्कर में पड़कर भाषा-सौष्ठव का तिरस्कारकरना घोर पातक है। कविता चाहे व्रजभाषा में हो, या खड़ी बोली में, इस गुण के तिरस्कार से कहीं भी लाभ होनेकी सम्भावना नहीं है। हां कविता केवल शब्द-जालमयी न होकर भाव-प्रधान हो, इस पर ध्यान रखना आवश्यक है। व्रज भाषा और खड़ी बोली के गुण-दोषों का विचार होना अभी वन्द नहीं हुआ है। अतएव उस झमेले पड़ना व्यर्थ है। हां इतना कहना आवश्यक है, कि जिसका जिस भाषा पर अधिकार हो वे उसी भाषा में कविता करें। हमारा निवेदन इतना ही है, कि कवि-गण को कविता करते समय भाषा- सौष्ठव का ध्यान अवश्य रखना चाहिए! केवल शब्दों के सरल कर देने से ही उनका भाव आसानी से समझा जा सकेगा इसमें सन्देह है। इसके लिए परिमार्जित रुचि की और भाव-ग्रहण करनेकी शक्ति की जरूरत होती है। अतः वर्ण-नीय विषय के अनुकूल भाषा-योजना होनी चाहिए।

दर्शन, विज्ञान, और गणित, आदि जैसे स्वतन्त्र शास्त्र हैं, और उनकी परिभाषायें निश्चित हैं। उन शास्त्रों में प्रवेश करनेके लिए

उनके समझने के लिए उन परिभाषाओं का जानना आवश्यक और अनिवार्य है, यदि रेखा-गणित के सिद्धान्त खूब सरल भाषा में लिख दिये जायँ, तो क्या रेखा-गणित की परिभाषाओं से अनभिज्ञ व्यक्ति उस भाषा की सरलता से कुछ लाभ उठा सकेगा? कदापि नहीं। उसी प्रकार साहित्य भी स्वतन्त्रशास्त्र है। उसकी भी अपनी निश्चित की हुई परिभाषायें हैं। साहित्य-शास्त्र के मर्म के जानने के लिए—उसका रस ग्रहण करने के लिए—उन परिभाषाओं का ज्ञान अवश्य होना चाहिए। वहाँ इस आपत्ति का कोई मूल्य न होगा, कि इसे सरल भाषा में लिखो। विचार-शीलों का सिद्धान्त है, कि भाषा-सौष्ठव से कविता के भाव का प्रभाव बढ़ जाता है। भावको प्रकाशित करने के लिए तदनुकुल उपयुक्त शब्दों की जरूरत होती है। अतएव वर्णनीय विषय के अनुकूल भाषा-योजना होनी चाहिए, भाव का प्रकाश करना भाषा का मुख्य कार्य अवश्य है। किन्तु यह भी ध्यान रखना आवश्यक है, कि, भाषा-सौन्दर्य निरर्थक नहीं है।

रस-निरूपण।

काव्य-शास्त्र में रस की बड़ी महिमा है। रस कविता की आत्मा है, अतएव रस-हीन कविता कविता ही नहीं, शब्दों का आडम्बर-मात्र है। साहित्य-दर्पणकार ने लिखा है "रसात्मकं वाक्यम् काव्यम्" इसी प्रकार अन्य आचार्यों ने भी रस की उप-

योगिता पर बहुत कुछ लिखा है। अब प्रश्न यह है, कि वह रस क्या वस्तु है? इस प्रश्न का उत्तर आचार्य भरत मुनि ने इस प्रकार दिया है:—विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के मिलने से स्थायीभाव परिपूर्ण होकर रस संज्ञा को प्राप्त होता है। अथवा जब कोई स्थायी भाव अपने कारणों, कार्यों और सहायकों की सहायता से काव्य में प्रकट होता है, तो उसे रस कहते हैं" रस दो प्रकार का होता है, एक अलौकिक, दूसरा लौकिक। अलौकिकरस स्वापनिक, मानोरथ तथा औपनायक नामक तीन उप विभागों में बंटा है। लौकिक रस नवप्रकार के होते हैं। उनके नाम ये हैं:—

(१) शृङ्गार	(४) रौद्र	(७) बीभत्स
(२) हास्य	(५) वीर	(८) अद्भुत
(३) करुण	(६) भयानक	(९) शान्त

भरत मुनि ने 'वात्सल्य' नामक इन नव रसों के अतिरिक्त एक और रस भी माना है।

निम्न लिखित रस एक दूसरे के मित्र अथवा शत्रु होते हैं।

मित्र	शत्रु
शृङ्गार का हास्य	शृङ्गार का वीभत्स
रौद्र का करुण	वीर का भयानक
वीर का अद्भुत	रौद्र का अद्भुत
बीभत्स का भयानक	करुण का हास्य।

जो रस एक दूसरे के मित्र या शत्रु नहीं हैं, वे उदासीन

कहलाते हैं। मित्र एव उदासीन रसों का साथ २ वर्णन हो सकता है, किन्तु शत्रुओं का कदापि नहीं। रस विरुद्ध और भाव विरुद्ध आदि वर्णनों को नीरस कहते हैं।

इन रसों की उत्पत्ति जिन भावों से होती है, उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं:—

(१) स्थायी भाव (२) विभाव (३) अनुभाव (४) व्यभिचारी या संचारी भाव,

(१) स्थायी भाव।

रसानुकूल हृदय में जो विकार उत्पन्न होता है, उसे स्थायी भाव कहते हैं।

स्थायी भाव नव प्रकार के होते हैं, (१) रति (२) हास (३) शोक (४) क्रोध (५) उत्साह (६) भय (७) ग्लानि (८) आश्चर्य (९) और निर्वेद या शम।

(१) रति, प्रिया और प्रियतम के मिलन की इच्छा से उत्पन्न हुई अपूर्व प्रीति को 'रति' कहते हैं, जैसे —

दोहा—कान्ह तिहारे ताप की, अति आतप यह आय।
तिय उर अंकुर प्रेमको, जाइ न कहु कुम्हिलाय॥

(२) हास, कौतुकार्थ वचन या रूपरचना से आह्लाद-युक्त मनोविकार को 'हास' कहते हैं, जैसे:—

सवैया—चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सु होरी।
बेंदी विशाखा रची पदमाकर अंजन आंजि समाजि कै रोरी॥

लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह को कंचुकी केसर बोरी।
हेरि हरे मुसुकाय रही अँचरा मुख दै वृषभानुकिशोरी॥

(३) शोक, हित की हानि अथवा अहित के लाभ से हृदय में जो दुःख उत्पन्न होता है, उसे शोक कहते हैं जैसेः—

दो०—राम भरत-मुख मरण सुनि, दशरथ को वन-माह।
महि परमै रोदन उचरि, हा पितु! हा नरनाह!!

(४) क्रोध, शत्रु के किये हुए अपमानादि से उत्पन्न हर्ष के प्रतिकूल मनोविकार को क्रोध कहते हैंः—

जो शत शंकर करहिं सहाई, तदपि हतौं रण राम दोहाई।

(५) उत्साह, उद्भट योद्धाओं को देख कर हृदय में जो चाव उत्पन्न होता है, उसे उत्साह कहते हैंः—

दो०—धनुष चढावत मे तबहि, लखि रिपुकृत उतपात।
हुलसि गात रघुनाथ को, बखतर में न समात।

(६) भय, भयङ्कर रूप को देख कर चित्त में जो व्याकुलता पैदा होती है, उसे भय कहते हैं।

दो०—तीन पैग पुहुमी दई. प्रथमहिं परम पुनीत।
बहुरि बढत लखि बामनहि, मे बलि कछुक सभीत॥

(७) ग्लानि, किसी वस्तु के देखने, एवं स्मरण करने अथवा छूने से चित्त में जो घृणा उत्पन्न होती है, उसे ग्लानि (जुगुप्सा) कहते हैं।

दो०—रिपु अतनि की कुण्डली, करि जोगिनि जु चबाति।
पीवहि में पागी मनो, युवति जलेबी खाति॥

(८) आश्चर्य, देखने, छूने, अथवा कानों से कोई अद्भुत चरित्र सुनने पर हृदय में जो विकार उत्पन्न होता है, उसे आश्चर्य कहते हैं। यथाः—

भा विपना प्रतिकूल जबे तब ऊंट चढे पर कूकर काटत!

(९) निर्वेद, परिश्रमादि के निष्फल होने पर हृदय में जो पश्चात्ताप उत्पन्न होता है, उसे निर्वेद या शम कहते हैं।

दो०—पद्माकर हौं निज कथा, कासों कहों बखान।
जाहि लखौं ताहे, परे, अपनी २ आन।

(२) विभाव

जो वस्तु रत्यादिक स्थायी भावों को उत्तेजित कर आस्वादन योग्य बनाती हैं, उसको विभाव कहते हैं।

विभाव दो प्रकार का होता है (१) आलम्बन (२) उद्दीपन।

(१) आलम्बन, जिसके सहारे रस प्रकट होता है.—जैसे रति के लिये नायक और नायिका। हास के लिये कोई विकृत वस्तु, और क्रोध के लिये शत्रु आदि।

(२) उद्दीपन, जो रस को प्रज्वलित करता है। जैसे रति के लिये चन्द्र, चन्दन, उद्यान, चन्द्रिका, पराग और कुसुमादि*।

* इसका विशेष वर्णन नायिका भेद शीर्षक प्रकरण में देखिए।

(३) अनुभाव

अन्तःकरण में विशेष कारणों से जो रत्यादिक भाव उत्पन्न होते हैं, उन भावों को बाहर प्रकट करने वाले विकार अनुभाव कहलाते हैं, इसके तीन भेद हैं, (१) सात्विक (२) कायिक (३) मानसिक ।

(१) सात्विक, शरीर के सहज अङ्ग विकार को सात्विक अनुभाव कहते हैं, इसके नौ भेद हैं ।

(१) स्तंभ (२) स्वेद (३) रोमांच (४) स्वर भङ्ग (५) कम्प (६) वैवर्ण्य (७) अश्रु (८) प्रलय (९) जृम्भा ।

(१) स्तंभ, हर्ष, लज्जा, व्याधि और श्रमादि कारणों से संपूर्ण अङ्गों की गति के थकित हो जाने को कहते हैं ।

पाय इकत निकुञ्ज में, भरी अ्रक व्रजनाथ ।
रोकनकों तिय करति पै, कह्यो करत नहि हाथ ।

(२) स्वेद, क्रोध, भय, हर्ष और श्रमादि से अङ्ग प्रत्यङ्ग में पसीना के झलक उठने को स्वेद कहते हैं । यथा —

श्रमविन्दु मुख राजीवलोचन अरुणातन शोणितकनी ।

(३) रोमांच, शीत, भय और हर्षादि के कारण शरीर में रोम उठ आने को रोमांच कहते हैं । जैसेः—

श्यामल गात रोम भये ठाढे ।

(४) स्वर-भङ्ग, हर्ष, भय, मद और क्रोधादि से स्वाभाविक वाक्य-ध्वनि का वदल जाना स्वर-भङ्ग कहलाता है । जैसेः—

पुलकिततनु मुख आव न वचना ।

(५) कंप, हर्ष, क्रोध, भय, और भ्रमादि के कारण अकस्मात् शरीरावयव के थर थराने को कंप कहते हैं। जैसेः—

थर थराहिं कंपहि पुर नारी।

(६) वैवर्ण्य, मोह, क्रोध और भय आदि से शरीर की कान्ति के परिवर्त्तन को वैवर्ण्य कहते हैं, यथा—

श्रीहत भये भूप धनु टूटे।

(७) अश्रु, हर्ष, शोक, भय और धूमादि के कारण नेत्रों से जो जल-प्रवाह होता है, उसे अश्रु कहते हैं, यथाः—

तासु दसा देखी सखिन पुलकगात जल-नैन।

(८) प्रलय, किसी विषय या किसी वस्तु में अपनी सुध भूल कर तन्मय हो जाने को प्रलय कहते हैं, यथाः—

व्याकुल राउ शिथिल सब गाता।

(९) जृम्भा, प्रिय-वियोग या मोह, आलस्य आदि के कारण क्षण २ में वदन उभारने को जृम्भा कहते हैंः—

दर दर दौरति सदन दुति, सम सुगन्ध सरसाति।
लखत क्यों न आलस-भरी, परी तिया मुरझाति।

(२) कायिकानुभाव

आख, भौंह और हाथ आदि शारीरिक अङ्गों से जो विविध चेष्टायें की जाती हैं, उन्हें कायिक या कृत्रिम अनुभाव कहते हैं।

दो०—*श्याम सैन तिय नैनतकि, निसरि भीरते आय।*
अधर आंगुरीधरि चली, चितकी चाह चिताय॥

(३) मानसिकानुभाव ।

मनः कृत प्रमोद आदि अनुभव को मानसिक अनुभाव कहते हैं, यथाः—

शरद पूर्णिमा यमुनतट, रास रच्यो नन्दलाल ।
मोद अलौकिक की छटा, इक जानत व्रज-बाल ॥

द्वादश हाव

कायिक और मानसिकानुभाव के अन्तर्गत होते हैं। संयोग शृङ्गार में बारह हावों का कथन होता है। संयोग समय में नायिकाओं की कृत्रिम कटाक्षादि चेष्टाओं को हाव कहते हैं। उनके नाम ये हैं—

(१) लीला	(५) किलकिंचित	(९) विहृत
(२) विलास	(६) ललित	(१०) कुट्टमित
(३) विभ्रम	(७) मोट्टायित	(११) हेला
(४) विच्छित्ति	(८) विब्बोक	(१२) बोधक

(१) लीला हावः—प्रिया और प्रियतम के आपस में एक दूसरे का भेष धारण करने को लीलाहाव कहते हैं, यथाः—

राधा हरि हरि राधिका, बनिआये सकेत ।

(२) विलास, नायिका संयोग-समय में कटाक्षादि अनेक भावों द्वारा प्रियतम को रिझाने का प्रयत्न करती है। वही विलास हाव है, यथाः—

समुझि श्याम को सामुहैं, करते वार वगार।
मन-मोहन मन-हरन को, लगी करन शृंगार॥

(३) विच्छित्ति थोडे ही शृङ्गार से अधिक शोभा प्राप्त हो कर नायिका का नायक के रिझाने को 'विच्छित्ति हाव कहते हैं, यथाः—

जनु मलिन्द, अरविन्द बिच, बस्यो चाहि मकरन्द।
इमिइक मृगमद विंदुसों, किये स्ववश ब्रजचन्द॥

(४) विभ्रम, जल्दी में कार्य के विपर्यय हो जाने को विभ्रम कहते हैं, यथाः—

पहिरि कंठ बिच किंकिणी, कस्यो कमर बिच हार।
हर बराय देखन लगी, कवते नन्द कुमार॥

(५) किलकिंचित हाव, एक साथ ही भय, हास्य, और क्रोधादि के उत्पन्न होने को किलकिंचित हाव कहते हैं, यथा.—

चढत भौंह धरकत हियो, हरषत मुख मुसक्यात।
मद-छाकी तियको जुपिय, छवि-छकि परसत गात॥

(६) ललित हाव, सयोग कालमें संपूर्ण अवयवों में--बोलनेऔर चलने आदि में—भी सरसता प्रदर्शित होनेको ललित हाव कहते हैं। यथाः—

मृदु मुसुकाय उठाय भुज, छिन घूघट पट टारि।
को मनि ऐसो ? जाहितू, इकटक रही निहारि॥

(७) मोट्टायित, प्रियतम के रूप-गुण कर्म और स्वभावादि सुन कर प्रेम भाव उत्पन्न होने को मोट्टायित हाव कहते हैं, यथा-

वसीकरन जबतें सुन्यो, श्याम तिहारो नाम।

दृगनि मूंदि मोहित भई, तबते इकटक बाम॥

(८) विब्बोक हाव, संयोग काल में मान पूर्वक प्रीतम के निरादर को विब्बोक हाव कहते हैं। यथाः—

रहौ देखि दृग दै कहा? तुहि न लाज कछु छूत।

मैं बेटी वृषभानु की, तू अहीर को पूत॥

(९) विहृत हाव, लज्जा वश प्रियतम के संमुख मनोरथ न प्रकट कर सकने को विहृत हाव कहते हैं। यथाः—

यह न बात आछी कछू, लहि योवन परकास।

लाजहिं ते चुप ह्वै रहति, जो तू पियके पास॥

(१०) कुट्टमित हाव, सुख समय में मिथ्या दुःख से रोष प्रकट करने को कुट्टमित हाव कहते हैं, यथाः—

कर ऐंचत आवत इंची, तिय आपहिं पिय ओर।

झूठि हु रूसि रहै छिनक, छुवत छरा को छोर॥

(११) हेला हाव, नायिका के धृष्टता पूर्वक, नाना प्रकार के विलास करने को हेला हाव कहते हैं, यथाः—

हर विरंचि नारद निगम, जाको लहत न पार।

ता हरि को गहि गोपिका, गरवि गुहावत वार॥

(१२) बोधक हाव, नायक नायिका के परस्पर कुछ संकेत मानकर अभीष्टार्थ के जतलाने को बोधक हाव कहते हैं, यथा—

निरखि रहे, निधि वन तरफ, नागर नन्द कुमार।
तोरि हीर को हार तिय, लगी बगारन बार॥

व्यभिचारी या संचारी भाव।

स्थायी भावों में जो विद्यमान रहते हैं, और संपूर्ण नवरसों में जल की लहर की तरह उत्पन्न होकर फिर उसी में लीन हो जाते हैं। वे समस्त भावों में संचारित होने के कारण संचारी भाव कहलाते हैं। सचारी भाव ३३ प्रकार के हैं।

(१) निर्वेद	(१२) मोह	(२३) उग्रता
(२) ग्लानि	(१३) स्वप्न	(२४) निद्रा
(३) शका	(१४) विबोध	(२५) व्याधि
(४) असूया	(१५) स्मृति	(२६) मरण
(५) श्रम	(१६) अमर्ष	(२७) अपस्मार
(६) मद	(१७) गर्व	(२८) आवेग
(७) धृति	(१८) उत्सुकता	(२९) त्रास
(८) आलस्य	(१९) अवहित्थ	(३०) उन्माद
(९) विषाद	(२०) दीनता	(३१) जडता
(१०) मति	(२१) हर्ष	(३२) चपलता
(११) चिन्ता	(२२) व्रीडा	(३३) वितर्क

(१) निर्वेद, विपत्ति, ईर्षा, अथवा अन्य किसी कारण ज्ञान उत्पन्न होने से सांसारिक अनित्य पदार्थों का निरस्कार करना निर्वेद कहलाता है. यथाः—

दो०—भयो न कोऊ होहि गो, मोंहि समान मतिमन्द ।
तजे न अबलों विषय विष, भजे न दशरथनन्द ॥

(२) ग्लानि, आधि-व्याधि या श्रमादि के कारण अङ्ग शिथिल होने को ग्लानि कहते हैं। यथाः—

भइ गलानि मोरे सुत नाहीं ।

(३) शङ्का, इष्ट-हानि के शोक को शङ्का कहते हैं। जैसेः—

शिवहि विलोकि संशकेउ मारू ।

(४) असूया, दूसरे के सुख या गुणों के न सहन करने को असूया कहते हैं। जैसेः—

जिनहिं सुहाय न अवध बजावा ।

(५) श्रम संचारी, किसी कार्य के अधिक करने से श्रमित होकर स्वेदादि निकलने के और फिर उस कार्य की अनिच्छा को श्रम कहते हैं। यथाः—

द्वन्द्व युद्ध देखहु सकल, श्रमित भये अति वीर ।

(६) मद-संचारी, धन, यौवन, अथवा मद्यादि सेवन से उन्मत्त हो असंगत वाक्यों का कहना और अनुचित व्यवहार करना मद कहलाता है। यथाः—

जग योद्धा को मोंहि समाना ।

(७) धृति-सचारी, साहस, ज्ञान, और सत्संगादि से विपत्ति में भी धैर्य का होना धृति है। यथा.—

वनचर, वनचर गगनचर, अजगर नगर निकाय ।*

पद्माकर तिन सबन की खबर लेत रघुराय ।

(८) आलस्य-सचारी, जागरणादि से अथवा सामर्थ्य होने पर भी उत्साह-हीन होने को आलस्य कहते हैं।

निशि जागी लागी हिये, प्रीति उमगत प्रात ।

उठि न सकत आलस वलित, सहज सलोने गात ॥

(९) विषाद सचारी, इष्ट न प्राप्त होकर अनिष्ट होने में जो दुःख होता है उसे 'विषाद' कहते हैं। यथाः—

राम २ रट विकल भुआलू ।

(१०) मति संचारी, मिथ्या भ्रम होने पर भी सुनीति और ज्ञान का होना मति सचारी है। यथा·—

उपज्यो ज्ञान वचन तव बोला ।

(११) चिन्ता-संचारी, जहां किसी बात की मनमें चिन्ता होती है, उसे चिन्ता सचारी कहते हैं। यथा.—

चितवत चकित चहू दिश सीता ।

(१२) मोह-सञ्चारी, चिन्तादि मनस्तापों से जब अपने शरीर का ज्ञान न रहे, उस दशा को मोह सचारी कहते हैं। यथा.—

मुनि अति विकल मोह मति नाठी ।

* जल

(१३) स्वप्न सञ्चारी, निद्रावस्था में किसी पदार्थ के ज्ञानको स्वप्न सञ्चारी कहते हैं। यथा,—

सपने वानर लंका जारी।

(१४) विबोध संचारी, निद्रा की विपरीत अवस्था को विबोध संचारी कहते हैं, यथाः—

विगत निशा रघुनायक जागे।

(१५) स्मृति-संचारी, भूले हुए किसी पदार्थ के पुनर्ज्ञान को स्मृति संचारी कहते हैं, यथाः—

सुधि न तात सीता कै पाई।

(१६) अमर्ष, क्रोध को अमर्ष-संचारी कहते हैं, (किसी के अभिमान को न सह कर उसके नाश की इच्छा को) भी कहते हैं यथाः—

कन्दुक इव ब्रह्माण्ड उठाऊ।

(१७) गर्व संचारी, बल विद्या बुद्धि आदि को दूसरे से अपने में अधिक मान कर उसका गर्व करना गर्व संचारी कहलाता है। यथाः—

भुज बल भूमि भूप बिन कीन्हीं।

(१८) उत्सुकता संचारी, किसी प्रेमी के मिलने की उत्कंठा अथवा किसी कार्य के साधन में निर्विलम्ब उद्यत होने को उत्सुकता संचारी कहते हैं, यथाः—

वेगि चलिय प्रभु आनिये, भुज बल रिपुदल जीति।

(१६) अवहित्थ संचारी, चतुरता-पूर्वक किसी बात या कार्य के छिपाने को कहते हैं। यथा.—

तन सकोच, मन परम उछाहू, गूढ प्रेम लखि परै न काहू।

(२०) दीनता संचारी, किसी विषय के अत्यन्त दुःख के कारण अत्यन्त दीनता दर्शित होने को दीनता सचारी कहते हैं। यथा.—

आपनि दारुण दीनता, कहेउ सबहिं शिरनाय।

(२१) हर्ष संचारी, जहा किसी कारण से चित्त को आनन्द प्राप्त होता है, उसे हर्ष संचारी कहते हैं। यथाः—

जानि गौरि अनुकूल, सिय हिय हर्ष न जाय कहि।

(२२) व्रीडा संचारी, किसी कारण वश लज्जा उत्पन्न होने को व्रीडा सचारी कहते हैं, यथा.—

गुरु जन लाज समाज बडि, देखि सीय सकुचानि।

(२३ उग्रता संचारी, निर्दय-पन उग्रता-संचारी कहलाता है। यथाः—

जितेहु सुरासुर तब श्रम नाहीं।
नर वानर केहि लेखे माहीं॥

(२४) निद्रा संचारी, शयन करना निद्रा संचारी कहलाता है। यथाः—

ते सिय राम साथरी सोये।

(२५) व्याधि संचारी, विरह वश कामादि, या अन्य किसी व्याधि के कारण रोगादि, संचार को व्याधि संचारी कहते हैं। यथाः—

देखी व्याधि असाधि नृप, पर्यो धरणि धुनि माथ।
कहत परम आरत वचन, राम २ रघुनाथ॥

(२६) मरण संचारी, शरीर से प्राण वायु के निकल जाने को कहते हैं, यथाः—

दो०—*राम २ हा राम कहि, राम २ कहि राम।*
तनु परि हरि रघुवर विरह, राउ गये सुरधाम॥

(२७) अपस्मार संचारी, अपस्मार (मृगी) रोग के सदृश अवस्था के हो जाने को कहते हैं।

अस कहि मुरछि परे महि राऊ।

(२८) आवेग सचारी, बहुत डर या अधिक स्नेह के कारण आतुरता से उठ चलना आवेग संचारी कहलाता है। यथाः—

सुनि आहट पियपग न की, भभरि भजी यौं नारि।
कहु कंकण, कहु किंकणी, कहू नु नूपुर डारि॥

(२९) त्रास सचारी, जहां किसी तरह का अनिष्ट होने से भय उत्पन्न हो वह त्रास संचारी कहलाता है। यथाः—

भा निरास उपजी मन त्रासा।

(३०) उन्माद सञ्चारी, बिना सोचे विचारे आचरण करने को उन्माद संचारी कहते हैं। यथाः—

लछिमन समुझाये बहुभाती, पूछत चले लता तरु पाती।

(३१) जडता संचारी, चलने फिरने और कर्तव्याकर्तव्य में चित्त-वृत्ति की असमर्थता को जडता संचारी कहते हैं। यथाः—

मुनि मग माझ अटल होइ वैसा।

(३२) चपलता संचारी, अधिक अनुराग के कारण स्थिरता का न रहना चपलता सचारी कहलाता है, यथा'

चकरीलों सकरी गलिन, छिन आवत छिन जात।
परी प्रेम के फद में वधू वितावत रात॥

(३३) वितर्क सचारी, किसी तरह का विचार करते ही चित्त में तर्क उत्पन्न होना वितर्क कहलाता है।

लका निश्चर निकर निवासा।
इहा कहा सज्जन कर वासा।

रस की उत्पत्ति कैसे होती है?

हम पहले लिख चुके हैं, कि रसकी उत्पत्ति भावों से होती है। एक उदाहरण द्वारा हम अपने कथन को पुष्ट करते हैं—

मान लीजिये, कि कृष्ण का प्रेम राधिका पर है, अतएव राधिका उस प्रेम की अवलम्बन हुई। चन्द्र, चांदनी, चन्दन, उपवन, सुगन्ध इत्यादि ऐसी चीजें हैं, जिनसे वह प्रेम उद्दीपित होता है, अतएव ये पदार्थ उद्दीपन हुए। इन कारणों का नाम विभाव हुआ। जो प्रेम उत्पन्न हुआ है, उसका नाम है 'रति'। यही रस का मूल रूप है, इसी का नाम है 'स्थायी भाव'।

कटाक्ष, भुक्षाक्षेप आदि कार्य हैं, इन्हीं से रति की प्रतीति हुई है, इन कार्यों का नाम है 'अनुभाव'। अब उस 'रति' की पुष्टता जिन उत्कंठा आदि के द्वारा हुई, है, उनका नाम है, संचारी या व्यभिचारी भाव। पाठक, देखिये, इस प्रकार अपने कारणों, कार्यों और सहायकों के द्वारा 'रति' भाव स्पष्ट होकर शृङ्गार रस कहलाने के योग्य हुआ।

शृङ्गार रस।

यह रस स्त्री पुरुष का परस्पर प्रेम दिखलानेवाला होता है।

स्थायी भाव,	रति
विभाव] (१) आलंबन,	नायक, नायिका
(२) उद्दीपन	चन्द्र, चांदनी, उद्यानका विहार आदि।
अनुभाव,	अंग विक्षेप, कटाक्षादि।
संचारी भाव,	स्वप्न, औत्सुक्य, चिन्ता, लज्जा आदि।

शृङ्गार रस दो प्रकार का होता है:—

(१) संयोग, शृङ्गार जिसमें दोनों प्रेमी एक दूसरे का दर्शन स्पर्शन करते हैं। यथा:— उदाहरण।

आपुसमैं रसमै रहसैं बहसै बनि राधिका कुञ्ज विहारी,
स्यामा सराहत स्याम की पागहिं, स्याम सराहत श्यामा की सारी,
एकहि दर्पन देखि कहै तिय, नीके लगौ पिय, प्यौ कहै प्यारी,
देवसु बालम बालको बाद विलोकि भई बलिहौं बलिहारी।

(२) वियोग या विप्रलम्भशृङ्गार, जिसमें प्रेमाधिक्य होते हुए भी विरह ही रहता है। यथाः—

शुभ शीतल मन्द सुगन्ध समीर कछू छल-छन्द सें छ्वै गये हैं।
पदमाकर चादनी चदहुके कछु औरहि डौरन च्वै गये है।
मन मोहन सो बिछुरे इतही, बनिके न अबै दिन द्वै गये हैं।
सखि वे हम वे तुम वेई बने, पै कछू के कछूमन ह्वै गये हैं।

वियोग शृङ्गार तीन प्रकार का है। (१) पूर्वानुराग (२) मान (३) प्रवास।

(१) पूर्वानुराग।

मिलने से पहले ही केवल दर्शन से प्रीत होकर मिलने की आतुरता को पूर्वानुराग कहते हैं। यथा—

दो०—ज्यों २ वर्षत घोरघन, घन घमड गरुवाइ।
त्यों २ परति प्रचड अति नई लगन की लाइ॥

पूर्वानुराग।

पूर्वानुराग के दर्शनानुसार ४ भेद हैं:—(१) श्रवण दर्शन (२) चित्र-दर्शन (३) स्वप्न-दर्शन (४) प्रत्यक्ष दर्शन।

(१) श्रवण-दर्शन, किसी के रूप, वय आदि की प्रशंसा मात्र सुनने से जो प्रेम चित्त में उत्पन्न होता है, उसे कहते हैं।

आनन पूरणचन्द लसै, अरविन्द विलास विलोचन पेखे,
अम्बरपीत हँसै चपला, छवि अम्बुद मेचक अग उरेखे।

कामहुते अभिराम महा, मतिराम हिये निहचै करिलेखे ।
ते वरन्यों निज वैनन सों, सखि मैं निज नैनन सो मनो देखे ।

(२) चित्र-दर्शन, किसी का मन-मोहक चित्र देख कर अनु-राग उत्पन्न होता है। यथाः—

हरषि उठी फिरि फिरि परखि, फिर परखति चखलाय ।
मित्र चित्त पट को तिया, उरसों लेति लगाय ॥

(३) स्वप्न-दर्शन, किसी को स्वप्न में देखने से जो प्रीति उत्पन्न होती है। यथाः—

सुन्दरि सपने में लख्यो, निशि में नन्द किशोर ।
होत भोर दधि लैचली, पूछति सखरी खोर ॥

(४) प्रत्यक्ष-दर्शन, किसी को सम्मुख देख कर प्रीति उत्पन्न होने को कहते हैं। यथाः—

दो०—हौं लखि आई, लखहुगी, लखै न क्यों व्रज लोग ।
निशि दिन साचहु सावरो. दुगुन देखिवे योग ॥

(२) मान ।

प्रिय पर अपराध-सूचक क्रोध को मान कहते हैं, यह तीन प्रकार का होता है। (१) लघु (२) मध्यम (३) गुरु।

(१) लघुमान, परस्त्री दर्शन-जनित। यथाः—

ये है जिन सुख वे दिये, करति क्यों न हिय होस ।
ते सब अबहिं भुलायतु, तनिक दृगन के दोस ॥

(२) मध्यम मान—अन्य स्त्री-प्रशंसा सूचक वाक्य सुन कर उत्पन्न होता है। यथाः—

आन २ तिय नाम लै, तुमहि बुलावत श्याम।
लैन कह्यो नहिं नाह को, जो तुम अपनो नाम॥

(३) गुरुमान—प्रियतम को अन्य स्त्री पर आसक्त जान कर मान का होना 'गुरुमान' कहलाता है। यथाः—

दो०—निरखि नेकुनीको बनो, या कहि नंद कुमार।
सुभुज मेलि मेल्यो गरे, गजमोतिन को हार॥

(३) प्रवास।

प्रियतम की विदेश-स्थिति को प्रवास कहते हैं। इसके दो भेद हैं—(१) भूत प्रवास, (२) भविष्य प्रवास।

(१) भूत प्रवास का उदाहरण—

सुनत सँदेश विदेश तजि, मिलते आय तुरन्त।
समुझी परत सुकन्त जहँ, तहँ प्रगट्यो न बसन्त।

(२) भविष्य प्रवास का उदाहरण—

रमन गमन सुनि ससिमुखी, भई दिवस को चंद।
परखि प्रेम पूरण प्रगट, निरखि रहे नँद नंद।

वियोग की एकादश दशा।

(१) अभिलाषा, नायक नायिका का आपस में एक दूसरे से मिलने की चित्त-चेष्टा को अभिलाष कहते हैं। यथाः—

प्रिय आगम ते प्रथम हीं, करि बैठी तिय मान ।
कब धौं आइ मनाइहै, यही रही धरि ध्यान ।

(२) चिन्ता, वियोग के कारण चित्त में उत्पन्न वृत्ति को चिन्ता कहते हैं। यथा —

दो०—कोमल कज मृणाल पै, कियो कलानिधि वास ।
कबको ध्यान रह्यो जुधरि, मित्र मिलन की आस ।

(३) गुण कथन, वियोग में प्रिया का प्रियतम के गुणानुवाद कथन करने को गुण कथन कहते हैं। यथा.—

गुण वारे गोपाल के, करि गुण गणनि बखान ।
इक अवधिहिं के आसरे, राखति राधे प्रान ।

(४) स्मरण, वियोग समय में प्यारे के पूर्व संयोग के समय की बातों का स्मरण होना ही स्मरण कहलाता है। यथा —

सघन कुज छाया सुखद, शीतल मद समीर ।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर ।

(५) उद्वेग, वियोग के समय में प्रियतम का स्मरण होना और किसी स्थान या वस्तु पर चित्त का स्थिर न होना उद्वेग है। यथा -

ह्वै उदास अति राधिका, ऊची लेति उसास ।
सुनि मनमोहन कान्ह को, कुटिल कूबरी पास ।

(६) प्रलाप, प्रिय की अनुपस्थिति में भी उसको उपस्थित मान कर विरहीजनों के वाक्यालाप को प्रलाप कहते हैं। यथा —

निरखत घन घनश्याम कहि, मेंटन उठति जु वाम।
विकल वीचहीं करत जनु, करि कमनैती काम।

(७) उन्माद, वियोगावस्था में अत्यन्त सयोगोत्कंठित हो कर मोह पूर्वक व्यर्थ रोदन या हंसी आदि व्यापार को उन्माद कहते हैं। यथा —

छिन २ रोवति छिन हसति, छिन बोलति छिन मौन।
छिन २ पर छीनी परति, भई दशा धौं कौन ?

(८) व्याधि, वियोग दुःख जनित कृशता तथा अस्वास्थ्यको व्याधि कहते हैं। यथा.—

दूरिही ते देखत विथामें वा वियोगिनी की आई भले भाजि ह्या इलाज मढि आवैगी। कहै पदमाकर सुनो हो घनश्याम जाहि, चेतत कहू जो एक आहि काढि जावैगी। सर सरितान को न सूखत लगैगी वार, येती कछु जुलमिनि ज्वाला वढि आवैगी। ताके तन ताप की कहौं मैं कहा वात मेरे गातही छुये ते तुम्हैं ताप चढि आवैगी।

(६) जडता, इन्द्रियों के ज्ञान शून्य हो जाने को जड़ता कहते हैं। यथा.

हलै दुहू न चलै दुहू, दुहुन विसरिगे गेह।
इकटक दुहुनि दुहू लखै, अटकि अटपटे नेह।

(१०) मूर्च्छा, वियोग दशा में देहके दुःख सुखादिकों के ज्ञान के अभाव को मूर्च्छा कहते हैं। यथाः—

तौही तौं भल अवधिलौं, रहै जुतिय निरमूल ।

नहिं तौ क्यों करि जियहिगी, निरखि शूल से फूल ।

(११) मरण, जब प्रियतम और प्रियतमा में वियोग होकर फिर मिलने की आशा नहीं रहती, उसदशा को मरण दशा कहते हैं । यथाः—

इन दुखियान को न चैन सपनेहू मिल्यो, तातें अति व्याकुल विकल अकुलायगी । प्यारे हरिचन्दजू की बीती जानि औंघ प्रान चाहत चल्यौं पै एतौं सग न सँमायगी । देख्यौं एक वारहू न नैन भरि तोंहि यापै, जौन २ देश जैहैं, तहां पछिता-यगी । विना प्राणप्यारे भये दरश तिहारे हाय, मरेहूपै आंखिये खुली ही रहजायगी ।

हास्य रस ।

वह रस है, जो विकृत आकृति, वचन और चेष्टा आदि से उत्पन्न होता है ।

स्थायी भाव, हास ।

विभाव] (१) आलंवन, विकृत आकृति ।

(२) उद्दीपन, हास्य जनक व्यक्ति की चेष्टा आदि।

अनुभाव, आंखें मटकाना, मुसकराना, हंसना आदि।

संचारी भाव, हर्ष चपलता आदि ।

उदाहरणार्थ, सवैया,

दाम की दाल, छदाम के चाउर, घ्यो अगुरीन लै दूरि दिखायो,
टोनो सो नोन धर्‌यो कछु आनि, सबै तरकारी को नाम गनायो।
विप्र बुलाय पुरोहित को अपने दुख को बहु भाति सुनायो,
साहजी आज सराध कियो सो भली विधि सों पुरखा फुसलायो।

चींटी न चाटत मूसे न सूंघत, बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जबते घरमें तबते रहै हैजा परोसिन घेरे।
माटिहुमें कछु स्वाद मिलै इन्हें खायकै ढूढत हर्र बहेरे।
चौंकि पर्‌यो पितु लोकमें बाप सो आपके देखि सराध के पेरे।

करुण रस।

यह रस इष्ट नाश और अनिष्ट प्राप्ति से पैदा होता है।

स्थायी भाव, शोक।
विभाव] आलंबन, शोच्य वस्तु।
उद्दीपन, दाना आदि
अनुभाव, देव निन्दा, दीर्घश्वास, अचेतनादि।
सचारी भाव, मोह, ग्लानि विषाद, चिन्ता आदि।

उदाहरणार्थ, सवैया।

डोलत बाल मराल की चालन खेलत लाल फिरैं ब्रजखोरी।
सोहत भाल विशाल हिए तन सोहत नील औ पीत पिछोरी।
साथ सखा सिरमोर पखा, धरि हाथ नचावत हैं चकडोरी।
फेरि कहौ कब देखिहौं ऊधव, स्यामलला बलराम की जोरी।

रौद्र रस ।

क्रोध की पुष्टता को रौद्र रस कहते हैं ।

स्थायी भाव, क्रोध ।

विभाव] आलंबन, शत्रु ।

उद्दीपन, शत्रुका प्रहार, ललकार आदि ।

अनुभाव, आंखें लाल होना, ओठ चबाना भौंहोंका-चढ़ाना, ताल ठोंकना आदि ।

संचारी भाव, आक्षेप, मोहादि ।

उदाहरणार्थ, चौपाई ।

जो शत शकर करहिं सहाई, तदपि हतौं रघुबीर दुहाई ।

वीर रस ।

वह रस है, जो उत्साह से पैदा होता है ।

स्थायी भाव, उत्साह ।

विभाव] आलंबन, जिसके विजय करने की इच्छा हो ।

उद्दीपन, शत्रु की चेष्टा ।

अनुभाव, अंगस्फुरण, नेत्रों की अरुणिमा आदि ।

संचारी भाव, उग्रता आदि ।

इसके चार भेद हैं । उदाहरणार्थ—

(१) युद्ध वीर ।

बाणन पै बाणके प्रहारनसों कोप आयो आई बाकुरे को सुधि बारिधि लँघन की । लाल-मुख औरहू विशाल लाल लाल

भयो एक लात वैरीके हिये पै जाय हनकी । तुरत फलांगि लांघि तुग तरु मेरु छायो तोरयो खड देखो शक्ति वायुके सुवन की । दैके चोप डका त्यागि शका महा बका वीर डारि दीन्हीं लका पै शिला हजार मनकी ।

दान वीर ।

दान उत्साह की पुष्टता को दान वीर कहते हैं आलंबन आदि में थोड़ासा फर्क है। उदाहरण—

जो सम्पति शिव रावणहि, दीन्ह दियें दश माथ ।

सो सम्पदा विभीषणहिं, सकुचि देत रघुनाथ ।

दया वीर

पापी अजामिल पार कियो जेहि नाम लियो सुतही को नरायन ।
त्यों पदमाकर लात लगेपर, विप्रहूके पग चौगुने चायन ।
को अस दीन दयाल भयो, दशरथ्थ के लाल से सूधे सुभायन ।
दौरे गयन्द उबारिबे को प्रभु बाहन छोंडि उबाहने पायन ।

धर्म वीर ।

दो०—शिवि दधिचि बलि जो कछु भाषा ।

तन धन तजेउ वचन प्रण राखा ॥

भयानक रस ।

भय की पूर्ण पुष्टता को भयानक रस कहते हैं ।

स्थायी भाव, भय ।

विभाव (१) आलंबन, जिससे भय पैदा हो।

(२) उद्दीपन, भयङ्कर वस्तु।

अनुभाव, चेहरे का रङ्ग उड जाना, कम्प आदि।

संचारी भाव, आवेग, दीनता, शंका, मृत्यु आदि।

डरपे गीध वचन सुनि काना।

अब भी मरण सत्य हम जाना।

वीभत्स रस।

वह रस है जिसमें रुधिर, दुर्गन्धि आदि पदार्थों का वर्णन हो।

स्थायी भाव, जुगुप्सा।

विभाव] (१) आलंबन, रक्त, मांस, मल, मूत्र आदि।

(२) उद्दीपन, दुर्गन्ध।

अनुभाव, थूकना, मुंह चिचकाना, नाक सिकोड़ना

संचारी भाव, व्याधि आवेग आदि।

उदाहरणार्थ चौपाई।

मज्जहि भूत प्रेत वैताला।

अथवा

आली आसमान पैन छाई अरुणाई यह, साफहीते लोहूके महा-नद वहाये हैं। चांदनी न फैली मेद-मज्जा को प्रसार यह घरमें घुसे हैं, लोग देखि कै घिनाये हैं। जामिनी कसाइनि करेजो काढि २ लेत नभ म 'सनेही' नहीं तारे छिटकाये है। पटकि २ चन्द शिला पै कसाई काम चूरकर हाड़ विरहीनके बिछाये हैं।

अद्भुत रस।

आश्चर्य जनक पदार्थों से पैदा होता है।

स्थायी भाव, विस्मय।

विभाव] (१) आलंघन, आश्चर्यकारी पदार्थ।

(२) उद्दीपन, आश्चर्यजनक गुण।

अनुभाव, रोमांच, नेत्र फाड़ना, भ्रम आदि।

संचारी भाव, हर्ष तर्क आवेगादि।

उदाहरणार्थ दोहा

दो०—घन वर्षत कर पर धरयो, गिरि गिरिधर निरशंक ॥
अजब गोप सुत चरित लखि, सुरपति भयो सशंक।

शात रस।

वेह रस है, जो निर्वेद भाव से पैदा होता है।

स्थायी भाव, शम।

विभाव] (१) आलंबन सत्संगति, गुरु आदि।

(२) उद्दीपन तपोवन मृतकादि।

अनुभाव, रोमाच।

संचारी भाव, धृति, मति आदि।

छहरै सिर पै छवि मोर पखा, उनके नथ के मुकता लहरैं।
फहरै पियरो पट वेनीं इतै, उनकी चुनरी के झवा झहरैं।
रस रग भिरे अभिरे हैं तमाल, दोउरस ख्याल चहैं, लहरैं।
नित ऐसे सनेह सों राधिका श्याम हमारे हिये में सदा ठहरैं।

नायिका-भेद।

हिन्दी-साहित्य में शृंगार-रसने घोपणीय संज्ञा धारण करली है। इसके विरुद्ध प्रचंड आन्दोलन हो रहा है। लोग शृङ्गार-रस का अर्थ ही अश्लीलता समझते हैं। संसार में जो कुछ अश्लील और शिष्टता के बहिर्भूत है, हिन्दी साहित्य में वही शृङ्गार रस समझा जाता है। हम कुरुचि प्रवर्त्तक-कविता के समर्थक नहीं हैं। और न शृङ्गार-रस के विरुद्ध जो अनुचित तथा उग्र आन्दोलन हो रहा है, उसके ही, किन्तु कुछ लोग कविता की कसौटी उपयोगितावाद और आदर्शवाद से करते हैं, और इस तरह से कविता के मुख्य उद्देश्य को दबा रहे हैं, एतदर्थ ही हम शृङ्गार-रस और अश्लीलता पर कुछ कहना चाहते हैं।

स्त्री और पुरुष का जो आदि सम्पर्क है, उसे लेकर ही समाज की सृष्टि हुई है। आदिम मनुष्य सम्पत्ति और स्त्री के अधिकार को अक्षुण्ण रखने के लिये समाजबद्ध हुए थे। उस समय स्त्री संपत्ति में ही गण्य थी, अन्य प्रकार के धन की तरह स्त्रीरूप धन भी, जिससे प्रबल के अत्याचार से दुर्बल के हस्तच्युत न हो जाय, इसलिये ही पुरुषों ने दल बांध कर समाज की सृष्टि की थी। सभ्यता के विकाशके बाद संसार के समस्त देशों में स्त्री-पुरुषों का सम्बन्ध ही समाज का दृढ़तर बन्धन रहा है। हमारे देश में भी विवाह प्रथा ही समाज बन्धन, या कौलीन्य प्रथा का मूल सूत्र है। स्त्री और पुरुष के यौन-सम्पर्क-घटित व्यापार को लेकर

सब युगों के, और सब देशों के कवियों ने जिस रस-सृष्टि का प्रयत्न किया है, वही शृङ्गार-रस है। मनुष्य-समाज का यह आदि या मूल सूत्र है, इसीलिये इसको 'आदि-रस' भी कहते हैं। श्लीलता और अश्लीलता की कोई मात्रा या माप नहीं है। यह समाज की मानसिक शक्ति विकाश पर निर्भर है। यूरोप की वर्तमान समाज की महिलायें सान्ध्य भोजन या नाच के लिये जिस ढङ्ग से सज्जित होती हैं, वह हमारे देश में अब तक अत्यन्त अश्लील समझा जाता है, और यूरोप में १६ वीं सदी के अन्त तक अश्लील समझा जाता था।

जो एक समय अश्लील था, वही अब श्लील हो गया है। संसार में सर्वत्र अश्लीलता की माप युग २ में इसी प्रकार परिवर्त्तित होती रहती है। हमारे भारतवर्ष में भी महाभारत काल, बौद्ध काल और वर्तमान काल की अश्लीलता की कसौटी में आकाश पाताल का अन्तर है। प्राचीन ग्रीस में सुन्दरी नारी का नग्न-रूप अश्लील नहीं समझा जाता था, यीशु ख्रीष्ट के जन्म के बहुत पूर्व लाइकरगसने अविवाहित युवतियों को पर्व के उपलक्ष्य में नग्न युवकों के सम्मुख नग्न होकर नाचने की आज्ञा दी थी!

अश्लीलता क्या है? इसका विश्लेषण करके देखने से प्रतीत होता है, कि, मानव जाति की कोई शाखा विशेष, जिस मूल-सूत्र से समाज-बद्ध हुई थी, उसके विरुद्ध आचार या व्यवहार अश्लील है। समाज बन्धन के मूल सूत्र सब देशों में एक समान

नहीं हैं, इसलिये हमारे देश में जो अश्लील है, वह यूरोप में श्लील हो सकता है। और जो यूरोप में श्लील है, वह हमारे देश में अश्लील हो सकता है। श्लीलता और अश्लीलता का भाव भिन्न भिन्न देशों में साहित्य के शृङ्गार रस के साथ इस प्रकार जड़ित है, कि उसके विश्लेषण के बिना रस-सृष्टि की प्रक्रिया में शृङ्गार रस का कौन सा अंश अश्लील है, उसकी विवेचना नहीं हो सकती।

हम पहले ही कह चुके हैं, कि, विवाह-तत्त्व मानव-समाज-बन्धन का मूल सूत्र है। किस समाज में कौन आचार, कौन व्यवहार अश्लील है, उसके निर्द्धारण करने के लिये सब से पहले विवाह-तत्व का विश्लेषण करना आवश्यक है। सब देशों में विवाह प्रथा एक सी नहीं है। अनुमान है, कि पहले, आदिम-मानव-समाज में विवाह प्रथा नही थी। जो पुरुष जिस नारी की कामना करता था, स्त्री की इच्छानुसार उसका उस से संयोग हो सकता था। स्वभावतः पुरुष, स्त्रीकी अपेक्षा अधिक बलवान् है, अतः अनेक समय स्त्री, पुरुष विशेष के साथ संयोग करने की अभिलाषिणी न होने पर भी, पुरुष द्वारा, संगत होने को बाध्य की जाती थी। स्त्री पर पुरुष का इस प्रकार बल प्रयोग करना आज इस सभ्य-युग में भी कम नहीं हुआ है। समय २ पर एक स्त्री के साथ एकाधिक पुरुषों की साहचर्य कामना करने से पुरुषों में आपस में लड़ाई होती थी। पुरुष-संघ में जो युद्ध में जयी होता था, स्त्री उसी की अङ्कशायिनी होती थी। समय २

पर दल बद्ध होकर लोग स्त्री का अपहरण भी कर लाते थे। यौन संपर्क के सम्बन्ध का पुरुषों का यह विवाद समाज-बन्धन का प्रधान कारण हुआ था।

इन्हीं सब विवादों के परिणाम स्वरूप आदिम-मानव समाज में विवाह प्रथा आरम्भ हुई थी। मैं दुर्बल हूं, इसलिये मेरी स्त्री, बहिन या कन्या को बलवान पुरुष जबरन् ग्रहण कर लेगा, यह डर ही मनुष्यों के समाज-बन्धन का प्रधान कारण है। इस डर से ही मनुष्य इच्छा करके दो बंधनों में आबद्ध हुआ था, प्रथम बन्धन है समाज और दूसरा है विवाह। आदिम मनुष्यों ने विवाह-सम्पर्क को जहां तक सम्भव है, कठिन बना दिया था। अग्नि को साक्षी करके, सूर्य को साक्षी कर के और शपथ आदि के द्वारा इस अप्राकृत संबन्ध को अत्यन्त दृढ प्रमाणित करने की चेष्टा की गई थी। इसका एकमात्र कारण है, मनुष्य का सम्पत्ति रक्षा का प्रयत्न। विवाह प्रथा जारी होने के बाद श्लीलता या अश्लीलता का सस्कार उत्पन्न हुआ था। अनेक दिनों तक मानव-समाज में पुरुष और स्त्री के जननेन्द्रिय के आवरण का अभाव ही अश्लीलता समझी जाती रही है। और अधिकाश निम्नतर समाजों मे लज्जा या अश्लीलता की रक्षा के सम्बन्ध में यही मत प्रचलित है। प्राचीन मिसर और ग्रीस में नितम्ब या वक्षस्थल के आवरण करने की प्रथा दीर्घ काल तक आवश्यक नहीं समझी गई थी। परवर्त्ती चिन्ता-शील मानव-समाज में नारी देह के जो २ अश जननेन्द्रिय के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध में

आबद्ध हैं, उन २ में आवरण-प्रणाली प्रचलित हुई। स्त्रियों के स्तन-द्वय जिस प्रकार जरायु और जननेन्द्रिय के साथ संलिष्ट हैं, पुरुष के स्तन उस प्रकार संलिष्ट नहीं है। स्त्रियों के नितम्ब गर्भ-स्थित बच्चों के निष्क्रमण के मार्ग हैं। इसलिये यौवन-काल में अत्यन्त वर्द्धित होते हैं। इसीलिये परवर्ती सभ्यतर मानव-समाज में रिरंसा का उद्योतक समझ कर स्त्रियों की देह के इन दो अंशों में आवरण-प्रथा प्रचलित हुई थी। देश भेद और युग-भेद से यह प्रथा परिवर्त्तित होती रही है। उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है, पुरुष या स्त्री की देह का जो अंश अनावृत रहने पर, या आवरण में भी सुस्पष्ट होने पर, अन्य पुरुष या स्त्री के मन में कामोद्दीपन का कारण होता है, वही साधारणतः अश्लील समझा जाता है। जिस देश में विवाह प्रथा का प्रचार है, उस देश के समाज, शिल्प या साहित्य में श्लीलता सामाजिक उत्कर्ष की परिचायक है। समाज विशेष में श्लीलता और अश्लीलता का आदर्श और दो आदर्शों के साथ घनिष्ठ-भाव से संश्लिष्ट है। ये दोनों आदर्श हैं (१) सतीत्व और (२) अगम्यावाद।

सतीत्व का प्रकृत अर्थ है, नारी का एक पतित्व। विवाह बन्धन के दृढ़ी करण का एकमात्र उपाय है, पतित्व के उच्च आदर्श का स्थापन। विवाह-बन्धन में व्यति क्रम हो जाने से मनुष्य के गार्हस्थ्य-जीवन में विप्लव उपस्थित हो जाता है। उस विप्लव का परिणाम होता है, रक्त-पात और नर-हत्या का नित्य अनुष्ठान। समाज-बद्ध मानव-जीवन में, सतीत्व-रूप आदर्श का

अनुशीलन, विवाह की मर्यादा के रक्षा करने का मुख्य उपाय है। हमारे देश के शास्त्रकारों ने सतीत्व की जो व्याख्या की है, वह अति उच्च है। इस प्रकार का उच्च आदर्श संसार के अन्य देशों में नहीं पाया जाता। श्लीलता, आदर्श के साथ ओत-प्रोत भाव से जड़ित है, अगम्यावाद। मनुष्येतर जीव-समाज में पुत्र मातृ-गमन किया करते हैं। कुत्ते, बछड़े आदि इसी श्रेणी में हैं। प्राणि-तत्व विशारदों का कहना है, कि अपेक्षा कृत उच्च वानर समाज में मातृ-गमन का अभाव है। मानव समाज में अगम्यावाद कितने दिनों से प्रचलित है, यह नहीं कहा जा सकता। मानव समाज का इतिहास जितना कुछ मिलता है, उसमें सभ्य या असभ्य किसी भी समाज में मातृ गमन का दृष्टान्त विरल है। पुत्र के साथ माता की रति-लालसा, पिता के साथ कन्या का संगम, भाई के साथ बहिन का सयोग सर्वत्र निन्दनीय है। पितृ मातृ सम्पर्क के ऊपर ही अगम्यावाद स्थापित है। इस सतीत्व और अगम्यावाद के व्यवहार-दोष से ही शृङ्गार-रस मिश्रित कविता में घृणित-रस की सृष्टि होती है। और निपुण कवि के हाथ से शृङ्गार-रस का चित्र, करुण स्निग्ध और मधुर हो उठता है। इतने विचार की आवश्यकता यह है, कि हिन्दी के कवियों ने शृङ्गाररसान्तर्गत नायिका भेद का वर्णन किया है, उसे आधुनिक विद्वान, रुचि-वैचित्र्य, समय-भेद अथवा ईर्षा से निन्दनीय कहते हैं। वे कविता को समाज का प्रतिबिम्ब मानते हैं, और नायिका-भेद में परकीया, गणिका आदि का वर्णन

देख कर कवियों को चरित्र-हीन और समाजको विकृत-रुचि बतलाते हैं। उनकी राय में उस समय आदर्श का तिरोभाव हो गया था आदि २। इसपर निवेदन इतना ही है, कि कविता का प्रभाव समाज पर खूब पड़ता है, लोक-शिक्षा और आदर्श-वाद की साधना भी इससे होती है, किन्तु यही कविता का एकमात्र आदर्श नहीं है।

कविता और नीति अलग २ हैं। कवि विषय को सुन्दरता से वर्णन करता है। नीतिकार समाज पर शासन करता है। यदि समाज की रुचि और प्रतिविम्ब देखना हो तो नीति ग्रन्थ, देखिये, कि वे अच्छे या बुरे किन आदर्शों का प्रचार करते हैं। रही चरित्र हीनता, सो यह एक ऐसा विचित्र रोग है, कि जिससे बड़े २ महापुरुप भी अछूते नहीं बचे। ऐसे भी लोग तो हैं, जो भगवान् कृष्ण को भी चरित्र-हीन और उच्छृङ्खल कहते हैं। हमारी समझ में तो किसी को अच्छी बातें करते या लिखते देख कर आदर्श पुरुप और सच्चरित्र मान लेना अनुचित है। ऐसे 'विपकुम्भ' और 'पयोमुख' संसार में विरले नहीं हैं। कवियों का भाव देखना चाहिये, वे जिस प्रकार करुणा के अवतार भगवान् बुद्ध का शब्द-चित्र खींच कर लोगों को करुणा-पूर्ण करेंगे, वैसे ही रुद्र-मूर्त्ति नादिरशाह का वर्णन भी करेंगे। वे धर्म प्राण महापुरुषों का और सती शिरोमणियों का भी वर्णन करेंगे, साथी ही समाज की कलुषित-प्रवृत्ति की परिचायक गणिकाओं का भी। कवि और नीतिकार का उद्देश्य अपना २ अलग २ है। इन बातों से

समाजको विकृत-रुचि और कवियों को चरित्र-हीन कहना साहस का काम है। और इसीलिये उनके ग्रन्थों को तिरस्कृत करना तो अन्याय है। हिन्दी साहित्य के धुरन्धर कवियों ने श्रृङ्गार रसान्तर्गत नायिका-भेद का जो वर्णन किया है, वह अनोखा है। और वह साहित्य से किसी प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता। हम यहा उसका साधारण परिचय देते हैं। विशेष जानने के लिये उन कवि-शिरोमणियों के ग्रंथ-रत्न देखने चाहिये।

नायिका।

जिस सुन्दर स्त्री को देखते ही हृदयमें श्रृङ्गार-रस का प्रादुर्भाव हो जाय, उसे नायिका कहते हैं। यथाः—

चाहिरे जागतसी जमुना जब बूडै बहै, उमहै वह बेनी।
त्या पद्माकार हीर के हारन गग तरगन को सुख देनी।
पायन के रग सो रगि जातिसी, भाति ही भाति सरस्वति सेनी।
पैरे जहाई जहा वह बाल तहा २ ताल में होत त्रिवेनी।

अथवा

कुन्दन को रग फीको लगै, झलकै अति अगनि चारु गोराई।
आखिन मैं अलसानि, चितौनि मैं मजु बिलासन की सरसाई।
को विन मोल विकात नहीं, मतिराम लहैं मुसुकानि मिठाई।
ज्यों २ निहारिये नीरे ह्वै नैननि, त्यों २ खरी निकरै सु निकाई।

धर्मानुसार इसके तीन भेद हैं। (१) स्वकीया (२) परकीया (३) गणिका।

स्वकीया के तीन भेद होते हैं। (१) मुग्धा (२) मध्या (३) प्रौढ़ा।

मुग्धा।

जिसके शरीर के प्रत्येक अंगमें नवयौवनांकुर निकलते आवें उसे मुग्धा कहते हैं, यथाः—

अभिनव योवन जोति सों, जग मग होत विलास।
तियके तन पानिप वढे, पिय कै नैननि प्यास।

मुग्धा के २ भेद हैं। (१) अज्ञात यौवना (२) ज्ञात यौवना।

अज्ञात यौवना।

जिसे अपना यौवनागम न जान पड़े, वह अज्ञातयौवना है। यथाः—

खेलन चोर-मिहीचनी आजु, गई हुती पाछिले द्योस की नाई।
आली कहा कहौं, एक भई, मतिराम नई यह बात तहाई।
एकहि भौन दुरे इक संगहि अगसो अंग छुवायो कन्हाई।
कंपु छुट्यो, तनु स्वेद वढ्यो, तन रोम उठे अँखिया भरि आई।

ज्ञात यौवना।

जिसे अपने यौवन का आगमन स्वयं ही जान पड़े, वह ज्ञात यौवना है। यथा,—

इतै उतै सकुचत चितै, चलत डुलावति बाह।
दीठ बचाय सखीन की, छिनक निहारति छांह।

इसके दो भेद हैं। (१) नवोढ़ा (२ विश्रब्ध नवोढ़ा।

नवोढा, अधिक भय या लज्जावश जो नायिका रति न चाहै, वह नवोढ़ा है।

राजि रही उलही छबिसों दुलही दुरि देखतही फुलवारी।
त्यों पदमाकर बोले हसै हुलसै विलसै मुख चद उज्यारी।
ऐसे समय कहु चातक की धुनि कान परी डरपी वह प्यारी।
चौंकि चली चमकी चित में चुप ह्वै रही चचल अचलवारी।

विश्रब्ध नवोढा, पति पर अनुराग और विश्वास करने वाली मुग्धा को कहते है। यथा —

जाहि न चाह कहू पति की सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यों पदमाकर आननमें रुचि कानन भौंह कमान लगी है।
देति पिया न छुवै छतिया बतियांन में तो मुसक्यान लगी है।
प्रीतमैं पान खवाइवे को अब तौ परयक लौं जान लगी है।

मध्या।

लज्जा और काम जिस स्त्रीमें समान हो, उसे मध्या कहते हैं। यथा —

देखे बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं।
इन दुखिया अखियान को, सुख सिरज्योही नाहिं।

मान समय मध्या के ३ भेद होते हैं, (१) धीरा (२) अधीरा (३) धीराधीरा। (१) धीरा जो पति के अन्य स्त्री-रति-सूचक चिह्नों को देखकर धैर्य पूर्वक व्यंग वचनों से क्रोध प्रकट करती है। यथा —

जो जिय में सो जीभ में, रमन रावरे ठौर ;
आजु कालिह के नरन के, जीभ कछू जिय और ।

(२) अधीरा, रति सूचक चिन्हों को देखकर अधीरता के साथ प्रत्यक्ष कोप और प्रियतम का अनादर करने वाली। यथा —

नाहक नाहक नाह मोहि, करि हौ कहा मनाय ।
सुवश भये जा तीय के, ताके परसो पाय ।

(३) धीरा धीरा। प्रियतम के रति सूचक चिह्न देख कर गुप्त और प्रकट होकर क्रोधप्रकाश करने वाली और मृदु भाषिणी। यथा

आजु कहा तजि बैठी हौ भूषण ऐसे ही अग कछू अरसीले ।
बोलत बोल रुखाई लिये मतिराम सुने तें सनेह सुशीले ।
कौन कहौ दुखप्रान प्रिया, अंसुवान रहे भरि नैन लजीले ।
कौन तिन्है दुख है, जिनके तुम से मनभावन छैल छबीले ।

प्रौढ़ा।

इसके (२) भेद हैं। (१) रति प्रीता (२) आनन्द सम्मोदिता।

(१) रति प्रीता। जिस स्त्री को रति अत्यन्त सुहावनी लगती है। यथा —

करति केलि पिय हिय लगी, कोक कलनि अवरेखि।
विमुद कुमुद लौं ह्वै रही, चन्द मद दुति देखि।

(२) आनन्द सम्मोहिता, सुरति आनन्द में मग्न हो जाने वाली प्रौढ़ा को कहते हैं। यथा —

भई मगन यों नागरी, सुलहि सुरत आनन्द।
अंग अंगोछि भूषण वसन, पहिरावत नँद नंद।

(१) प्रौढा धीरा, जो स्त्री रति समय में मान सहित उदासीन रहै, और प्रिय का आदर न त्याग करै। यथा,--

दरस दौरि, पिय पगपरसि, आदर कियो अछेह।
तेह गेह पति जानिगो, निरखि चौगुनो नेह।

(२) प्रौढा अधीरा, प्रियतम का अन्य स्त्री रति सूचक चिह्न धारण देख कर किञ्चित ताडन सहित कोप जनाने वाली।

पाग ढुरी पीरी खरी पिय मुख परी निहारि।
फूल छरी कर में धरी, अनख भरी झझकारि।

प्रौढा धीरा धीरा प्रियके तन में अन्य स्त्री रति सूचक चिह्न देख कर गुप्त और प्रकट मान पूर्वक तर्जन, और ताडन आदि सहित क्रोध प्रकट करने वाली नायिका को कहते हैं।

अनत रगे पतिकी सु अति, गहि २ गहकि गुनाह।
दृग मरोरि मुख मोरि तिय, छुवन देति नहि छांह।

ज्येष्ठा और कनिष्ठा।

जहां दो स्त्रियां विवाहिता हों, वहां जो प्रियतमकी विशेष प्यारी हो, उसे ज्येष्ठा और दूसरी को कनिष्ठा कहते हैं. यथाः—

खेलत फागु खेलार खरे, अनुराग भरे वड भाग कन्हाई।
एकही भौन में दोउन देखि कै, देव करी इक चातुरताई।
लाल गुलालसों लीन्हीं मुठी भरि, वालके गाल की ओर चलाई।
वा दृग मूदि उतै चितई, इन भेंटी इतै वृषभानु की जाई।

परकीया।

परपुरुषानुरागिणी नायिका को परकीया कहते हैं। इसके दो भेद हैं, ऊढ़ा और अनूढ़ा। और इन दोनों में से प्रत्येक के छः छः भेद हैं। (१) गुप्ता, (२) विदग्धा, (३) लक्षिता, (४) कुलटा, (५) अनुशयाना (६) मुदिता।

(१) ऊढ़ा।

जो नारी व्याही किसी को हो, और प्रीति किसी से करे, उसे ऊढ़ा कहते हैं। यथाः—

क्यों इन आंखिन सों निरसक ह्वै मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारे कलंक लगै, यहि गांव वसे कहौ कैसे कै जीजै।
होत रहै मन यों मतिराम कहू वन जाइ वडो तप कीजै।
ह्वै वनमाल हिये लगियै, अरु ह्वै मुरली अधरा रस पीजै।

(२) अनूढा।

जो किसी पुरुष से प्रेम करती हो, परन्तु अविवाहिता हो, उसे अनूढा कहते हैं। यथा:—

बाँसुरी ह्वै लगों मोहन के मुखमाल ह्वै कठ तजों नहिं फेरी।
त्यों पदमाकर ह्वै लकुटी रहौं, कान्हर के कर घूम घनेरी।
पीत पटी ह्वै कटी लपटौं घटते न घटे चित चाह जु एरी।
दै बरदान यहै हमको, सुनिये गन-गौरि गुसाइनि मेरी।

गुप्ता।

अन्य पुरुष की प्रीति सम्बन्धी क्रिया को छिपानेवाली स्त्री 'गुप्ता' कहलाती है। इसके ३ भेद हैं, (१) भूत सुरति सगोपना (२) वर्तमान रति-गोपना (३) भविष्य सुरति सगोपना।

(१) भूत-सुरति सगोपना।

बीती हुई रति को छिपानेवाली नायिका 'भूत-सुरति संगोपना' कहलाती है। यथा:—

मोतिन की माल तोरि, चीर सब चीर डारे फेर नहिं जैबो आली दुख बिकरारे हैं। देवकीनँदन कहैं धोखे, नाग छौनन के, अलकैं प्रसून तेऊ नोचि निरवारे हैं। जानि मुख चन्द्रकला चोंच दीन्हीं अधरनि, तीनों ए निकुजन में एकै तार वारे हैं। ठौर ठौर डोलत मराल मतवारे तैसे, मोर मतवारे त्यों चकोर मतवारे हैं।

वर्तमान सुरति संगोपना।

वर्तमान समय की रति को छिपाने वाली नायिका को वर्तमान सुरति संगोपना कहते हैं। यथा —

ऊधम ऐसो मचो ब्रजमें, सबै रंग तरंग उमगनि सींचैं।
त्यों पदमाकर छज्जनि छातनि, छ्वै छिति छाजतीं केसरि कींचैं।
दै पिचकी भरि भीजी तहा परे, पीछे गुपाल गुलाल उलींचैं।
एकही संग इहा रपटे, सखि ये भये ऊपर हौं भई नीचैं।

अथवा।

चढ़त घाट विचल्यो सुपग, भरी आइ इन अंक।
ताहि कहा तुम तकि रहीं, यामें कौन कलंक।

भविष्य सुरति संगोपना।

भावी रति को छिपाने वाली नायिका को भविष्य सुरति संगोपना कहते हैं। यथा —

कीच भरी कल क्यारिनमैं सुक सारिक तेन कछू भय पानौं।
कंटक वेलि विसालन सो, तरु जाल वितान जहा उरझानौं।
संग न मोर सखी चलिहैं, निज हाथनि हैं, चुनि नेम निभानौं।
प्रात प्रसून गिरीश चढ़ावन, आज भटू मोंहि बागहि जानौं।

विदग्धा।

इसके २ भेद हैं। (१) वचन विदग्धा, (२) क्रिया विदग्धा।

(१) वचन विदग्धा।

अन्य पुरुष के प्रेमसंवन्धी कार्य को जो वाक्य के कौशल-पूर्वक सिद्ध करती है, वह वचन विदग्धा है। यथा —

पिय पागे परोसिन के वसमें, वसमें न कहू वस मेरे रहैं।
पदमाकर पाहुनी सी ननदी, ननदी तजै पै अवसेरे रहैं।
दुख और यों कासों कहौं को सुनै, ब्रजकी वनिता द्दग फेरे रहैं।
न सखी घर साझ सवेरे रहैं, घनश्याम घरी घरी घेरे रहैं।

अथवा

*कनकलता *श्रीफल फरी, रही विजन बन फूलि।*
ताहि तजत क्यों वावरे, अरे मधुप मति भूलि।

क्रिया विदग्धा।

अन्य पुरुष के अनुरागसम्वन्धी काय को क्रिया-चातुरी द्वारा सिद्ध करनेवाली नायिका को क्रियाविदग्धा कहते हैं, यथा—

वैठी तिया गुरु लोगनमैं, रति तें अति सुन्दर रूप विशेखी।
आयो तहा मतिराम सो जामैं, मनोमनतें वढि कान्ति उरेखी।
लोचन रूप पियोई चहैं, अरु लाजनि जात नहीं छवि पेखी।
नैन नवाय रही हिय मालमैं, लाल की मूरति लालमैं देखी।

लक्षिता।

जिस नायिका के अन्य पुरुष-सम्बन्धी प्रेम को किसी चिह्न से जान कर कोई प्रकट कर दे, वह लक्षिता कहलाती है। यथा —

---

*नारियल

मेरे बूझत बात तू, कत बहरावति बाल ।
जग जानी विपरीत रति, लखि विंदुली पिय-भाल ।

अथवा ।

†नटिन सीस सावित भई, लुटी सुखन की मोट ।
*चुप करिये *चारी करति, सारी परी °सरोट ।*

कुलटा ।

बहुत पुरुषों के साथ प्रेम रखने वाली नायिका को कुलटा कहते हैं । यथा —

विपिन बाग वीथी जहा, प्रबल पुरुषमय ग्राम ।
काम-बलित बलि बामको, तहा तनिक विश्राम ।

अनुशयाना ।

संकेत नष्ट जाने के कारण दुःखित नायिका को अनुशयाना कहते हैं । इसके भी तीन भेद होते हैं ।

प्रथम अनुशयाना (संकेत विघट्टना) ।

वर्तमान-संकेत-स्थान को नष्ट देखकर दुःखित होनेवाली नायिका प्रथम अनुशयाना कहलाती है । यथा —

अति शीतल मंद सुगंध समीर, हरै विरही जन दागन को ।
सर सत बसंत गुलाब गुलाब, अनन्त करै अनुरागन को ।
सुख होत महा सबके उरमें, लखि नीरजवन्त तड़ागन को ।
सखि री दुख एक अपार अरे, पतझार करै वन बागन को ।

---

†अस्वीकार करना, *चुगली करना, °सिकुड़ना ।

द्वितीय अनुशयाना (भावी संकेत नष्टा)।

भावी संकेत का नष्ट होना जानकर दु:खित होनेवाली नायिका भावी संकेत नष्टा कहलाती है। यथा —

सन सूको बीत्यो बनौ, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौं, घर *धरहरि हिय नारि।

तृतीय अनुशयाना (रमणागमना)।

जो प्रियतम का संकेत-स्थल में आना अनुमान करके वहाँ न पहुचने के कारण व्याकुल हो, उसे रमणागमना कहते हैं। यथा -

जीरी गयो जबही सग लागि, अचानक जो अधराति लसीरी।
सीरी लखात छिनौं छिनमें, मनमैं मधुरी धुनि आनि छिपीरी।
पीरी परी सब देह गुलाब, वियोग विथा लखि होति अधीरी।
धीरी रहौं कहिधौं, केहि भाति ? अवै यह बासुरी फेरि बजीरी।

मुदिता।

जो अपने अनुकूल काम या समय को देखकर, प्रसन्न होती है, उसे मुदिता कहते हैं। यथा —

वृन्दावन वीथिन विलोकन गई ही जहा, राजत रसाल वन ताल रु तमाल को। कहै पदमाकर निहारत वन्योई तहा, नेहिन को नेम प्रेम अदभुत स्याल को। दूनो दूनो बाढत सु पूर्नो की निशा में अहो! आनद अनूप रूप काहू ब्रजबालको। कुजतें कहूंको सुनि कन्त को गमन, लखि आगमन तैसो मनहरन गुपालको।

*धैर्य

गणिका।

केवल सम्पत्ति के लिए अनुराग करने वाली नायिका को गणिका कहते हैं। यथा —

तन सुवरन, सुवरन वसन, सुवरन उकति उछाह।
धनि सुवरन में ह्वै रही, सुवरन ही की चाह।

उपर्युक्त नायिकाओं के तीन भेद होते हैं। (१) अन्य सुरति-दुःखिता, (२) मानिनी (३) वक्रोक्ति गर्विता।

(१) अन्य सुरति दुःखिता।

जो प्रियतम की प्रीति का दूसरी स्त्री पर चिन्ह पाकर दुःखित होती है, वह अन्य सुरति दुःखिता है। यथाः—

खान, पान शय्या शयन जासु भरोसे आइ।
करै सुछल अलि आपसों, तासों कहा वसाइ?

(२) मानिनी।

प्रियतम का अपराध जानकर उससे जो मानकरे, वह नायिका मानिनी कहलाती है। यथाः—

वंक विलोकन दीठि चलायरी, नेह लगाय कै पीठि न दीजै।
बौरी न हूजिए मान कह्यो अब, प्रीतम को अपनाय कै लीजै।
मोहिनी रूप की वैसहि पाय कै, को नहि जोबन के मद भीजै।
ऊजरी जो पै करी करतार तो, गूजरी एतो गरूर न कीजै।

(३) वक्रोक्ति गर्विता।

इसके दो भेद हैं, (१) प्रेम गर्विता, (२) रूप गर्विता।

प्रेम गर्विता, प्रियतम के अनुराग का गर्व करने वाली नायिका प्रेम गर्विता कहलाती है। यथा —

आखिन मैं पुतरी ह्वै रहै, हियरा मे हरा ह्वै सबै रस लूटै।
अगन सग बसैं अग राग ह्वै, जीवतैं जीवन मूरि न टूटै।
देवजू प्यारे के न्यारे सबै गुन, मो मन-मानिक ते नहि छूटै।
और तियानतें तौ वतिया करै. मो छतिया तें छिनौ जव छूटैं।

रूप गर्विता।

जो स्त्री अपने सौन्दर्य का बहुत गर्व करती है, उसको रूप-गर्विता कहते हैं। यथा—

न्हातई न्हात तिहारई श्याम, कलिन्दियौ श्याम भई बहुतै है।
धोखे हू धोयहौ यामें कहू, तो यहै रग सारिन में सरसै है।
सावरे अगको रग कहू यह. मेरे सु अगन में लगि जैहै।
छैल छबीले छुओगे जो मोंहि, तो गातन मेरे गुराई न रैहै।

स्वकीया परकीया और गणिका के निम्न लिखित दश भेद होते हैं।

(१) प्रोषित पतिका	(६) वासक सज्जा।
(२) खण्डिता	(७) स्वाधीनपतिका।
(३) कलहान्तरिता	(८) अभिसारिका।
(४) विप्रलब्धा	(९) प्रवत्स्यत्पतिका।
(५) उत्कंठिता।	(१०) आगत पतिका।

इन नायिकाओं में प्रत्येक के ३ भेद होते हैं। यथा —
(१) स्वकीया प्रोषित-पतिका। (२) परकीया, प्रोषित-पतिका और (३) गणिका प्रोषित-पतिका। इसी प्रकार खण्डिता आदि के भी भेद होंगे।

प्रोषितपतिका।

जिस स्त्रीका प्रियतम विदेश में हो, और वह काम पीड़ित रहती हो उसे प्रोषित-पतिका कहते हैं। यथा —

पति प्रीति के भारन जाति उनै, मति ग्वै दुख भारन सालेपरी।
मुख वात में होती मलीन सदा, सोई मूरति पौन के पाले परी।
'द्विजदेव' अहो करतार! कछू करतूति न रावरी आलेपरी।
वह नाहक गोरी गुलाब कलीसी, मनोज के हाथ हवाले परी।

स्वकीया प्रोषित-पतिका।

अब ह्वैहै कहा अरविन्द सो आनन, इन्दु के हाथ हवाले पस्यो।
पदमाकर भाषै न भाषे बनै, जिय ऐसे कछूक कसाले पस्यो।
इक मीन विचारो, बंध्यो बनसी, पुनिजालके जाइ दुमाले पस्यो।
मन तो मन मोहन के सँग गो, तन लाज मनोज के पाले पस्यो।

परकीया प्रोषित-पतिका।

धिक देह औ गेह सबै सजनी, जेहि के बस नेह को टूटनो है।
उन प्रान पियारे बिना यहि जीवहिं, राखि कहा सुख लूटनो है।

'हरिचन्द' जू बात ठनी सो ठनी, नितकी कल कानितें छूटनो है।
तजि और उपाव अनेक अरी, अब तो हमको विष घूटनो है।

गणिका प्रोषित-पतिका।

*घनसार पटीर मिलै मिलै नीर, चहै तन लावै न लावै चहै।
न बुझै विरहागिनि झार झरीहू, चहै घन लावै न लावै चहै।
हम टेर सुनावति बैनी प्रवीन, चहै मन लावै न लावै चहै।
अब आवै विदेश ते प्रीतम गेह, चहै धन लावै न लावै चहै।

खण्डिता।

प्रियतम के शरीर पर 'अन्यत्र-रमण' के चिन्ह देखकर दुःखित हो कर कोप करने वाली नायिका खण्डिता कहलाती है।

स्वकीया खण्डिता।

खाये पान बीरी सी विलोचन विराजे आज, अञ्जन अँजाये अधराधर अमीके हैं। कहै पदमाकर गुनाकर गुविन्द देखो, आरसी† लै अमल कपोल किनपीके हैं। ऐसो अवलोकिवेई लायक मुखारविन्द, जाहि लखि चन्द अरविन्द◊ होत फीके है। प्रेम-रस पागि जागि आये अनुराग यातें, अब हम जानी कै हमारे भाग नीके हैं।

अथवा

फूल गुलाव से फूलि रहे, दृग किंसुक से अधरा अधकारे।
झारि कै लाज पतौवनको, किसलै सम जावक है अरुनारे।

---

* चन्दन †दर्पण ◊कमल

तोष लसै मृगके मदकी, तन लीक अली* अवली† मतवारे।
मोद अनन्त भयो उर अन्तर, आये वसन्त ह्वै कन्त हमारे।

परकीया खण्डिता।

साहसहूं न कहू रुख आपनो, भाषै बनै न बनै विन भाखैं।
त्यों पदमाकर यों मगमैं, रँग देखतहों कवकी रुख राखैं।
वा विध सांवरे रावरे की, न मिलै मरजी न मजा न मजाखैं।
वोलनि वानि, विलोकनि प्रीति की, वो मन वे न रहीं अब आसैं।

गणिका खण्डिता।

मोतिन को नहरा हियमैं, अरु हीरन की पहुची कह कीने।
माल को ककन को उरमैं, अरु पीठमैं दाग भले करि लीने।
आवत हौ कत भोर ही लाल, हमै वकसो कहि तोष प्रवीने।
जाहु वहै धनि पै घनश्याम, जिन्हैं तुम राति घने धन दीने।

कलहान्तरिता।

प्रियतम के अपमान करने के पश्चात् दुःखित हो कर अनुताप करने वाली नायिका को कलहान्तरिता कहते हैं।

स्वकीया कलहान्तरिता।

वैरिनि जीभहिं काटि करौं, मन द्रोही को मींजिकै मौन धरौंगी।
जाने को देव, कहा भयो मोंहि, लरी कहें लोकमें लाज मरौंगी।

---

*भौंरा †भुण्ड

प्रानपती सुख सरस वे उनसों, गुन रूपको गर्व करोंगी।
अंजुलि जोरि निहोरि गरे परि, हौं हरि प्यारे के पाय परोंगी।

परकीया कलहान्तरिता।

जाके लिए गृह-काज तज्यो, न सखी सखियान की सीख सिखाई।
बैर कियो सिगरे ब्रज-ग्रामसों, जाके लिये कुल-कानि गँवाई।
जाके लिये घर बाहरहू, मतिराम रहें हसि लोग लुगाई।
ता हरि सों हित एकहिं बार, गँवारि मैं तोरत बार न लाई।

गणिका कलहान्तरिता।

हीर की हार हजारन को धन, देत हुते सुख से सरसाने।
हौं न लयो पदमाकर त्यों अरु, बोली न बोल सुधा रस साने।
ये चलि आते गये अनते, हमका अब आपनी बात बखाने।
आपने हाथ सों आपने पाइ पै, पाथर पारि परयो पछिताने।

विप्रलब्धा।

संकेत स्थान में प्रियतम को न देखकर जो नायिका व्याकुल होती है, उसे विप्रलब्धा कहते हैं। यथाः—

स्वकीया विप्रलब्धा।

केलिके मंदिर देख्यो न लाल को, बालके दाहनि अंग दहे हैं।
भौंह चढाय सखी को लख्यो, मतिराम कछू ना कुबोल कहे हैं।
भूल हुलासं विलासं गये, दुखतें भरि कै अँसुवा उमहें हैं।
ईछन छोरन ते न गिरे, मनों तीछन कोरनि छेदि रहे हैं।

परकीया विप्रलब्धा।

कुंज सहेट न भेट भई अँग अंग, अनंग के पुंज सतावहिं।*
आलम आली सो आपनी बात, कहै न कछू अखिया भरि आवहिं।
कालिमा कज्जल की छवि बुन्द परैं, अधरापर यों दुति पावहि।
मानहु मत्त मधूपन के सुत, कंज† को छोड़ि बधूक को धावहिं।

गणिका विप्रलब्धा।

अति नेह कै मोंहि बोलायो इतै, अब बोरत मेह महीतल को है।
चलि आई मझार महावन में, तनमें श्रम-सीकर को झलको है।
न मिले अब नौलकिशोर पिया, हियो बेनी प्रवीन कहैं कलको है।
कछु सोच नहीं धन पावन को, सखि सोच यहै उनके छल को है।

उत्कंठिता।

रति-स्थल में जाकर और प्रियतम के आनेमें विलम्ब होता देख कर जो स्त्री चिन्तित होती है, उसे उत्कंठिता कहते हैं। कोई कोई 'उत्का, भी कहते हैं।

स्वकीया उत्कंठिता।

जोन्ह ते खाली छपाकर भो, छनमैं छनदा‡ अब चाहति चाली।
कूजि उठे चटकाली◇ चहूदिसि, फैलिगई नभ ऊपर लाली।
साली मनोज-विथा उरमैं, निपटे निठुराई धरे वनमाली।
आली कहा कहिए कहि तोष, कहू पिय प्रीति नई प्रतिपाली।

---

*कामदेव, †कमल, ‡रात, ◇चिड़ियां

अथवा।

बीति गई जुग जाम निसा, मतिराम मिटी तम की सरसाई।
जानति ही कहू और तियासे, रहे रसमें रमिके रसराई।
सोचत मेज परी यों नवेली सहेली, सो जात न बात सुनाई।
चन्द चढ्यो उदयाचल पै, मुख चन्द पै आनि चढी पियराई।

परकीया उत्कंठिता।

यमुना के तीर भये सीतल समीर जहा, मधुकर मधुर करत मन्द सोर हैं। कवि मतिराम, तहा छवि सों छवीली वैठि, थगनि तैं फैलत सुगन्ध के भकोर हैं। प्रीतम विहारी के निहारिवे को वाट ऐसी. चहुओर दीरघ दृगनि करि दौर हैं। एक ओर मीन मानों एक ओर कज-पुज, एक ओर खञ्जन चकोर एक ओर हैं।

गणिका उत्कंठिता।

रैनि रही अति थोरी कहू भटके, वन वोलन चाहत काग हैं।
आये न वेनीप्रवीन ववाकिसौं, नौलकिशोर भरे अनुराग हैं।
कालि गये कहि देन गढाय, वढाय सनेह समूह सोहाग हैं।
भूषन भूरि जराय के देते वदे, सजनी कोउ और के भाग हैं।

अथवा।

काहू कियो धौं कहा वस भावतो, काहू कहू धौ कछू छल छायो।
त्यों पदमाकर तान तरगनि, काहू किधौं रचि रग रिझायो।
जानि परै न कछू गति आज की, जाहित एतो विलम्व लगायो।
मोहन मो मन मोहिवे को किधौं, मो मन को मनि हार न पायो।

वासक सज्जा।

प्रियतम का आगमन निश्चित जानकर, संभोग सामग्री प्रस्तुत करने वाली स्त्री को वासकसज्जा कहते हैं।

स्वकीया वासकसज्जा।

केसरि कनक कहा, चम्पक बनक कहा, दामिनी यों दुरि-जात देह की दमक तें। कविमतिराम लौने लोचन लपेट लाज, अरुन कपोल काम तेज की तमक तें। पग के धरत कल किंकिनी नूपुर बजै, बिछिया झनकि उठे एक ही झमक तें। नाह मुख नाह चित औचकि हंसति प्यारी; चौंक परे चन्द्रमुखी चौका की चमक तें।

परकीया वासकसज्जा।

सोसनी दुकूलनि दुराये रूप रोसनी है, बूटेदार घाघरी की घूमनि घुमाइ कै। कहै पदमाकर त्यों उन्नत उरोजन पै, तग अंगिया है; तनी तनिन तनाइ कै। कुञ्जन की छाह छवि छैल के मिलै के हेतु, छाजति छपामै यों छवीली छवि छाइ कै। ह्वै रही खरी है छरी फूल की छरी सी छिपि, साकरी गलीमें फूल पांखुरी बिछाइ कै।

गणिका वासकसज्जा।

मज्जन कै दृग अञ्जन दै, मन रञ्जन भूषन साज सुधारे।
झूलत त्यों नथ को मुकताहल, कीर मनों ससि में मतवारे।

तोष हिये धन की करि कामना, सुन्दरि सुन्दर सेज सवारे।
दैहैं हमैं सुख साज सबै सखि, आवहिंगे व्रजराज हमारे।

स्वाधीन पतिका।

जिस स्त्री का पति सदा उसके वशमें रहे, उसे स्वाधीन-पतिका कहते हैं।

स्वकीया स्वाधीनपतिका।

ता छिनतैं रहे औरनि भूलि, सुभूली कदम्बन की परिछाहीं।
त्यों पदमाकर संग सखान को, भूलि भुलाई कला अवगाहीं।
जा छिनते तू वशीकर मलसी, मेली सुकान्ह के कानन माहीं।
दै गल बाहीं जु नाहीं करी, वह नाहीं गुपाल को भूलत नाहीं।

अथवा।

आपुहि बार पसारि सुधारि हमैं अन्हवाइ दियो सुखदानी।
नाइन के कर ते लै महावर, मेरो लियो पग आपने पानी।
देन लगे कहि तोष सो प्रीतम, आइ गई ननदी अभिमानी।
तैसी नहीं कहि जाति कछू अलि, जैसी कछू हम आज लजानी।

परकीया स्वाधीनपतिका।

चढि ऊंची अटा पर बासुरी लै, अब नाम हमारो बजाइये ना।
सुनि चौचँदहाई चवाव करैं, यह बात कहौं बिसराइये ना।
कमलापति साची कहौं इतनी सुनि, कोह कछू मन लाइये ना।
बिनती परि पाय तिहारी करों, कुल कानि हमारी गॅवाइये ना।

गणिका स्वाधीनपतिका।

आपुही पान खवावत आय, सहेली न आवन पावतनेरे।
भूषन अवर ल्यावत आप रहें, पहिरावन को मुख हेरे।
ता पियसों रिस कैसे करू, मतिराम कहे सिखये सखि तेरे।
पूर रहे मन-भावन के गुन, मान को ठौर नहीं मन मेरे।

अभिसारिका।

प्रियतम के पास संभोग के लिये संकेत स्थान में जानेवाली, या संकेत स्थान में उनको बुलाने वाली स्त्री को अभिसारिका कहते हैं। यथा —

स्वकीया अभिसारिका।

किंकिनी छोरि छपाई कहूं, कहु बाजनी पायल पायते नाई।
त्यों पदमाकर पातहु के, खरके कहु कापि उठै छवि छाई।
लाजहिं ते गडि जात कहू, अडि जात कहू गज की गति भाई।
बैस की थोरी किशोरी हरे हरे, या विधि नन्दकिशोर पै आई।

परकीया अभिसारिका।

सूझत न गात वीति आई अधरात अस, सोये सब जानि गुरु जन जे वगरके। छिपि कै छबीली अभिसार के किवार खोलि, छूटिगे सुगन्ध चारु चन्दन अगर के। देव कहैं भौंर गुंजि आये कुज कुंजन ते, पूंछि पूंछि पाछे परे पाहरू डगर के। देवता कि दामिनी मसाल कै धों ज्योति ज्वाल झगरे परत जागे सगरे नगरके।

गणिका अभिसारिका।

घनश्यामहिं धाम सुन्यों वनमें, तन भूषन साजि सिंगार धरो।
उर लालच आनि मिली सुखदानिहि, आजु सबै दुख दूरि करो।
कहि तोष मिली हरि को तँह जाइ, जहा हरि कुञ्ज कदंब तरो।
रति मानि लियो श्रुति कुंडल हार, कहै पट पीरे विना न टरो।

नोट—अभिसारिका के और भी ३ भेद होते हैं। (१) दिवाभिसारिका, (२) कृष्णाभिसारिका, और (३) शुक्लाभिसारिका।

प्रवत्स्यत् पतिका।

प्रियतम का विदेश जाना निश्चित समझ कर आकुल होने वाली स्त्री को प्रवत्स्यत् पतिका कहते है यथा—

स्वकीया प्रवत्यसत् पतिका।

सेज परी सफरी सी पलोटति, ज्यों ज्यों घटा घनकी गरजैरी।
त्यों पदमाकर लाजनि तें, न कहै दुलही हिय को हरजैरी।
आली कछू को कछू उपचार, करै पै न पाय सकै मरजैरी।
जाय न ऐसे समय मथुरै, कहि कोऊन कान्हर को बरजैरी।

परकीया प्रवत्स्यत् पतिका।

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों, क्यों फिर नेह को तोरिये जू।
निरधार दै धार मझार दई, गहि बांहन काहू को बोरिये जू।
घन आनन्द आपने चातक को, गुन बांधि कै मौन न छोरिये जू।
रस प्याय कै ज्याय बधाय कै आस, विश्वास में ना विष घोरिये जू।

गणिका प्रवत्स्यत् पतिका।

यह दीजिए माल हसैं मुकुतानि की, रावरे की जप ठानहिंगी।
अरु दीजिए हीरन की पहुंची, कर भूपन और न आनहिंगी।
बरजोर जो जात विदेश हहा, यहि भांति महादुख मानहिंगी।
पहिरौंगी यहै पट रावरे को, कहि तोप वियोग न मानहिंगी।

आगत पतिका।

प्रियतम के विदेश के आगमन से प्रसन्न होनेवाली नायिका को आगत पतिका कहते हैं।

स्वकीया आगत पतिका।

आंगन वैठी सुन्यो पिय आवत, चित्त झरोखन तें लरक्यो परै।
देवजू घूघट के पटहू में, समात न फूल्यो हियो फरक्यो परै।
नैनन आनँद के अंसुवा मनो भौंर सरोजन ते सरक्यो परै।
दन्त लसै मृदु मद हसी सुख सों, मुखदाडिम सो दरक्यो परै।

अथवा।

प्रान पियारो मिल्यो सपने में, परी जब नेसुक नींद निहोरे।
नाहको आइबो त्योंही जगाय, कह्यो सखि बैन पियूप निचोरे।
यों मतिराम बढ्यो जियमें, सुख बाल के बालम सों दृग जोरे।
ज्यों पटमें अति ही चमकीलो, चढ़ै रंग तीसरी बार के बोरे।

परकीया आगत पतिका।

एकै चलै रस गोरस लै अरु, एक चलै मग फूल बिछावत।
त्यों पद्माकर गावत गीत सु, एकै चलै उर आनन्द छावत।

यों नँद नद निहारिबे को, नँद गाउ के लोग चले सब धावत।
आवत कान्ह बने बरसाने ते, प्रान परे से परोसिनि पावत।

गणिका आगत पतिका।

आवत नाह उछाह भरे अवलोकिबे, को निज नाटकशाला।
हौं नचि गाय रिझावहुगी पदमाकर, त्यों रचि रूप रसाला।
ए सुक मरे सुमेरे कहे यों इतै कहि, बोलियो बैन बिसाला।
कंत बिदेश रहे हौ जितै दिन देहु, तितै मुकतानि की माला।

सूचना,—उपर्युक्त नायिकायें गुणोंके अनुसार तीन श्रेणियों में विभक्त की जाती हैं।

(१) उत्तमा।

अपने प्रियतम के अवगुणों को देखकर भी जो नायिका अपने मनमें कोप न करे वह उत्तमा है। यथाः—

पाती लिखी सुमुखि सुजान पिय गोविन्द को श्रीयुत सलोने, श्याम सुखनि सने रहौ। कहै पदमाकर तिहारी छेम छिन छिन, चाहियतु प्यारे मन मुदित घने रहौ। विनती इती है कै हमेशहू मुहैं तौ निज पाइनकी पूरी परिचारिका गने रहौ। याहीमें मगन मनमोहन हमारो मन, लगनि लगाय मन मगन बने रहौ।

(२) मध्यमा।

अपने प्रियतम के गुण दोष के अनुसार मान-सन्मान करने वाली नायिका मध्यमा है। यथाः—

हेत करै पति प्रेम पग्यो अनहेत, तऊ अपने उर आनै।
जो अनहेत करै पति ही तिय सील, सनी हित ही करि मानै।
भाव कुभाव गुलाब कहै, हित बैरनको पशु पक्षिहु जानै।
जीवन है तिनको धिक्करी! गुन औगुन जो पिय के न पिछानै।

(३) अधमा।

प्रियतम के अधिकाधिक आदर करने पर भी जो कोप ही किया करती है, वह नायिका अधमा है।

एक समै हरि राधे खरे, कर काधे दुहूनि के दोऊ धरे है।
जोहि मुखै लखै आरसी लै, हियमैं सुखतोष अनोखो भरे हैं।
आपनी छांह को आनती जानि, कियो जिय नाह सों मान खरे हैं।
बाल की वक्र भई भृकुटी, औ विसाल विलोचन लाल करे हैं।

नायक-वर्णन।

लक्षण।

जो सुन्दर, गुण-धाम, और युवक हो। कविता, राग और रस का वेत्ता हो। स्त्रियां जिसको सानुराग देखें, वह नायक है। इसके ३ भेद होते हैं, ।

(१) पति (२) उप-पति (३) वैसिक।

(१) पति।

जिसने विधिवत् नायिका का पाणि ग्रहण-किया हो, वह पति है। इसके चार भेद होते हैं। (१) अनुकूल, (२) दक्षिण (३) धृष्ट और (४) शठ।

अनुकूल।

जो अपनी विवाहिता स्त्री से ही अनुराग रक्खे, और पर स्त्री-विमुख हो। यथा—

मण्डप ही में फिरै मँडरात, न जात कहू तजि नेह को थौनो।
त्यों पदमाकर तोहिं सराहत, बात कहे जु कछू कहु कौनो।
ऐ बड भागिनि तोसी तुहि, बलि जो लखि रावरो रूप सलौनो।
व्याहहिं ते भयो कान्ह लटू, तब ह्वै है कहा जब होहिगो गौनो।

दक्षिण।

बहुत स्त्रियों से बराबर अनुराग रखने वाला 'दक्षिण' पति है।

निज २ मनके चुनि सबै, फूल लेहु इकबार।
यह कहि कान्ह कदब की, हरपि हिलाई डार।

शठ।

जो अपने कार्य की सिद्धिके लिए मधुर-भाषण करनेवाला और अपने अपराधों को कपट-पूर्वक छिपाने में प्रवीण हो, उसे शठ कहते हैं। यथा—

हौंन कियो अपराध बलि, वृथा तानियतु भौंह।
तुव उरसिज हरि परसि कै, करत रावरी सौंह।

धृष्ट।

जो निश्शंक होकर अपराध करता है, किन्तु हृदय में जरा

भी लज्जित नहीं होता। और नायिका के बार २ टालने पर भी नहीं टलता, उसे धृष्ट कहते हैं। यथाः—

यदपि न बैन उचारियतु, गहि निवारियतु बाह।
तदपि गरेई परत है, गजब गुनाही नाह।

उपपति।

दूसरे की स्त्रियों पर अनुरक्त होनेवाले को उप-पति कहते हैं। यथाः—

जाहिर जाइ सकै न तँह, घरहाइन के त्रास।
परे रहत नित कान्ह के, प्रान परोसिनि पास।

वैसिक।

वेश्यानुरागी, निर्लज्ज और निर्भय नायक को वैसिक कहते हैं। यथा—

लोचन पानिप ढिग सजी लट बशी पर-बीन।
मो मन बार विलासिनी, फासि लियो जनु मीन।

उपर्युक्त नायकों के और भी चार प्रकार होते हैं,

(१) मानी, जो नायिका से मान करता है।

(२) प्रोषित, जो विदेश में रहता हुआ प्रणयिनी वियोग से व्याकुल हो।

(३) वचन चतुर, वाक् चातुर्य से अपना कार्य सिद्ध करने वाला।

(४) क्रिया चतुर, छल-क्रिया से अपना कार्य सिद्ध करने वाला।

नोट.—(१) इनका विशेष वर्णन अनावश्यक है। कारण नायिकाओं में भी इसी प्रकार के यह ४ भेद होते हैं, और उनसे इन चारों का कुछ अन्तर नहीं है।

(२) वैसे तो जितनी नायिकायें होती हैं, उतने ही नायक भी होते हैं, किन्तु कवियों ने इतनों का ही वर्णन किया है।

उद्दीपन विभाव।

सखा।

नायक के ४ प्रकार के सखा होते हैं।

(१) पीठ-मर्द, (२) विट (३) चेटक और (४) विदूषक।

(१) पीठ मर्द, मानिनी नायिकाओं का मान अपनोदन करके नायक से मिला देनेवाला पीठ-मर्द है।

(२) विट, जो सब कलाओं में प्रवीण हो वह विट है।

(३) चेटक, जो अवसर के अनुकूल नायक-नायिकाओं का सगम करा दे, वह चेटक है।

(४) विदूषक, जो अनेक प्रकारके स्वांग, मजाक, और गान आदि से नायक को प्रसन्न करे, वह विदूषक है।

सखी।

जिनसे नायक और नायिकायें किसी प्रकार का भेद-भाव नहीं रखतीं, वे सरल स्वभाव वाली और सुघर स्त्रियां 'सखी' कहलाती हैं।

सखियों का कार्य।

मण्डन, शिक्षा, उपालम्भ और परिहास।

(१) मण्डन, नायिका को वस्त्र-आभूषणादि से शृंगार करने को मण्डन कहते हैं। इसी के अन्तर्गत कवियों ने 'नख-शिख' का वर्णन किया है।

(२) शिक्षा, नायिका को विनय और विलासादि संबन्धी सिखावन को शिक्षा कहते हैं।

(३) उपालंभ, नायक या नायिकाओं को किसी तरह का उलाहना देना उपालम्भ है।

(४) परिहास, जिस कार्य से नायक और नायिका को आनंद या हास्य प्राप्त हो उसे परिहास कहते हैं।

दूती।

नायक और नायिका के मिलाने में प्रवीण स्त्री को दूती कहते हैं।

दूती के कार्य।

(१) विरह-निवेदन, (२) संघट्टन।

(१) विरह निवेदन, नायक और नायिका को विरह सम्बन्धी बातें सुनाना विरह निवेदन कहलाता है।

(२) संघट्टन, विरह-निवेदन सुनाने के अनन्तर नायक और नायिका का संयोग कराना संघट्टन है।

स्वयंदूतिका।

जो स्त्री अपने लिए खुदही दूतीपना करे, उसे स्वयंदूतिका कहते हैं।

इसके अतिरिक्त कामउद्दीपन में सहायक षट् ऋतु, चंद्र, चन्दन, चंद्रिका, वन उपवन और नगर इत्यादि का भी वर्णन नायिका भेद में होता है।

अलङ्कार-वर्णन।

लक्षण।

अलङ्करोतीति—अलङ्कारः, जो कविता की शोभा बढ़ावे, वही अलङ्कार है। अर्थात् किसी वाक्य के वर्णन करने का 'चमत्कारिक' ढङ्ग अलङ्कार कहलाता है, अलङ्कार शब्द और अर्थ संबन्धी एक प्रकार की वह सामग्री हैं जिससे शब्दार्थों में रोचकता बढ़ जाती है। अतएव अलङ्कार काव्य का एक आवश्यक अङ्ग है, जिस प्रकार हार, मुद्रिका आदि धारण करने से शरीर का सौन्दर्य बढ़ता है, उसी प्रकार उपमा अनुप्रास आदि अलङ्कारों से काव्य का सौन्दर्य बढ़ जाता है। तथापि यह नहीं कहा जा सकता, कि अलङ्कारों के बिना कविता हो ही नहीं सकती। अलङ्कार तीन प्रकार के होते हैं:—(१) शब्दालंकार (२) अर्थालंकार और (३) उभयालंकार।

(१) शब्दालंकार।

जहा शब्दो में चमत्कार पाया जाय उसे शब्दालंकार कहते हैं—

इसके मुख्य नौ भेद होते हैं (१) अनुप्रास (२) यमक (३) श्लेष (४) पुनरुक्ति, (५) पुनरुक्तिवदाभास, (६ वीप्सा, (७) वक्रोक्ति, (८) प्रहेलिका, (६) चित्र। हम इनमें से ५ का वर्णन करते हैं।

(१) अनुप्रास।

जहां स्वर वर्ण मिलते हों या न मिलते हों, किन्तु व्यञ्जन वर्णों की समानता हो, वहां अनुप्रासालंकार होता है। इसके ५ भेद हैं। (१) छेक (२) वृत्ति (३) श्रुति (४) लाट और (५) अन्त्य।

छेकानुप्रास।

जहां व्यञ्जनों का एक वा अनेक वार सादृश्य हो, वहां छेकानुप्रास होता है। यथाः—

रसवती रसना करके कहीं,
कथित थी कथनीय गुणावली।

यहां र. स और क की पुनरावृति हुई है।

(२) वृत्यनुप्रास।

जहां एक या अनेक भिन्न २ व्यञ्जनों का कई वार सादृश्य—मेल हुआ हो, वहां वृत्यनुप्रास होता है। यथाः—

नभ लाली चाली निशा, चटकाली धुनि कीन।
रति पाली आली अनत, आये वनमाली न।

यहां पर कई वर्णों की वार २ आवृत्ति हुई है।

वृत्तियां तीन प्रकार की होती हैं, (१) मधुरा (२) परुषा और (३) कोमला या प्रौढ़ा। इन्हीं को क्रम से (१) वैदर्भी (२) गौड़ी और पांचाली रीति भी कहते हैं।

(१) जिस कविता में माधुर्य गुणवाले वर्ण हों वह उपनागरिका या मधुरा वृत्ति है। यथा.—

रघुनन्द आनँद कद कोसल चद दशरथ नन्दन।

(२) जिस कविता में ओज गुणवाले कठोर वर्ण हों, उसे परुषा वृत्ति कहते हैं। यथाः—

खग काक कक शृगाल, कटकटहि कठिन कराल।

(३) जिसमें प्रसाद गुण वाले शब्द हों वह कोमला या प्रौढा वृत्ति है। यथा —

स्यामल गौर किसोर वर, सुन्दर सुखमा ऐन।

(३) श्रुत्यनुप्रास।

जहा तालु कंठ आदि स्थानों से उच्चारित होने वाले वर्णों की समता हो, वहाँ श्रुत्यनुप्रास होता है। यथाः—

जयति द्वारकाधीस जय सन्तन सन्ताप हर

यहाँ ज० य० तालु स्थानी और न० त दन्त्य स्थानी का सादृश्य है।

(४) लाटानुप्रास।

जहा शब्द और अर्थ एक ही रहें, केवल अन्वय करने ही से भेद हो जाय, वहा लाटानुप्रास होता है। यथाः—

काल करत कलिकाल में, नहिं तुरकन को काल।

काल करत तुरकान को, सिव सरजा करवाल।

यहाँ 'काल करत' शब्द की आवृत्ति है। आशय में भेद हैं। अर्थात् कलियुग में तुरकों का नाश काल नहीं करता। किन्तु शिवाजी की कृपाण काल करती है, अर्थात् मारती है। यह लाट देश के कवियों के मस्तिष्क की उपज है। इसलिए लाटानुप्रास कहलाता है।

(५) अन्त्यानुप्रास।

पदों के अन्त्याक्षर अर्थात् तुकान्त का नाम अन्त्यानुप्रास है। यथा —

मेरी भव बाधा हरो राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परे श्याम हरित दुति होय॥

(२) यमक।

एकही सा शब्द बार २ आवे किन्तु अर्थ भिन्न २ हो, उसे यमक कहते हैं। यथाः—

तोपर वारों उर बसी, सुन राधिके सुजान।
तू मोहन के उर बसी, ह्वै उरबसी समान।

अथवा।

भये विदेह विदेश विशेषी।

यहां उरबसी और विदेह शब्द बार २ आने पर भिन्न २ अर्थ वाले हैं।

(३) पुनरुक्ति।

जहां भाव को स्पष्ट और सुन्दर बनानेके लिए एक ही शब्द का बार २ प्रयोग किया जाय। यथाः—

घनश्याम प्रभा लखि कै सखिया.

अखिया सुख पाइहैं पाइहै पाइहैं।

(४) वक्रोक्ति।

जहा कहे हुए वाक्य का श्लेष से अथवा काकु (उच्चारण भेद) से और ही अर्थ किया जाय। वहा वक्रोक्ति होती है। इसके २ भेद हैं।

(१) श्लेष (२) काकु।

(१) अनेकार्थवाची शब्दों से दूसरा अर्थ कल्पित किया जाय तो श्लेष वक्रोक्ति होती है। यथा —

को तुम ? हरि, प्यारी ! कहा बानर को पुर काम।

श्याम सलोनी श्याम कपि क्यों न डरे तव धाम।

यहा श्याम और कपिका भिन्न अर्थ किया गया है।

काकु वक्रोक्ति।

जहाँ ध्वनि विशेष से दूसरा अभिप्राय कल्पित कर लिया जाय, वहाँ काकु वक्रोक्ति होती है। यथा —

मैं सुकुमारि ! नाथ वन जोगू !!

तुमहिं उचित तप हम कह भोगू।

(५) श्लेष।

जहा पदं या पद समूह के अनेक अर्थ होते हों, वहा श्लेपालंकार होता है यह दो प्रकार का है।

(१) शब्द श्लेष (२) अर्थ श्लेष।

रावण सिर सरोज-वनचारी, चले रघुनाथ शिली मुखधारी।

यहां शिली मुख के दो अर्थ हैं—(१) बाण और (२) भौंरा।

अथवा।

अजौं तर्‍यौना ही रह्यो, श्रुति सेवत इक अंग।

नाक बास वेसरि लह्यो, बसि मुकतनि के संग।

यहां तर्‍योना, श्रुति और मुकतनि शब्द में श्लेष है। अर्थ-श्लेष का वर्णन अर्थालंकारों में होगा।

अर्थालंकार।

अर्थ चमत्कृति के कारण चित्त को जो आह्लादित करे, उसे अर्थालंकार कहते है। अर्थात् जो अलंकार अर्थों में रह कर काव्य को अलंकृत करे।

इसके उपमादि बहुत से भेद हैं। उपमा जानने से पूर्व निम्न लिखित उसके चार अंगों का जानना अत्यन्त आवश्यक है।

(१) उपमेय, जिसकी अन्य प्रसिद्ध वस्तु से समता की जाय जैसे मुख, आखें, केश आदि। इसीको वर्णनीय, प्रस्तुत, विषय और प्रकृत भी कहते हैं।

(२) उपमान, जिससे उपमेय की समता की जाय, जैसे चन्द्र मीन, भ्रमर आदि। इसीको, विषयी, अप्रस्तुत, अप्रकृत भी कहते हैं।

(३) वाचक, जिन शब्दों और अक्षरों के सहारे उपमान् और उपमेय की समता प्रकट होती है। वे वाचक कहलाते हैं। यथा — इमि, सो, सरिस, समान आदि।

(४) धर्म, जिस कारण उपमान और उपमेय की समता होती है। यथा —उज्वल, विशाल, काला आदि ।

उपमा ।

जब दो वस्तुओं में भिन्नता रहते हुए भी उनके समान धर्म स्वभाव गुण आदि की समता वर्णन की जाय, तब उपमा अलंकार होता है। इसके दो भेद होते हैं।

(१) पूर्णोपमा (२) लुप्तोपमा ।

(१) पूर्णोपमा ।

जहां उपमान, उपमेय, धर्म और वाचक चारों रहें, वहा पूर्णोपमा होती है। यथाः—

राम लखन सीता सहित, सोहत परण निकेत ।
जिमि वासव बस अमरपुर, शची जयत समेत ।

कोष्ठकमें देखिये ।

नाम	उपमेय	उपमान	वाचक	धर्म
पूर्णोपमा	राम लखन सीता	वासव जयन्त शची	जिमि	सोहत

इसी प्रकार और भी,

रह्यौ ऐंचि अतन लह्यो, अवधि दुशासन बीर ।
आली वाढत विरह ज्यों, पाचाली को चीर ।

उपमा अलंकार के और भी दो प्रधान भेद हैं। यथाः—

(१) मालोपमा।

जहाँ एकही उपमेय के बहुत से उपमान कहे जांय, वहां मालोपमा अलंकार होता है। यथाः—

सफरी से चञ्चल घने. मृग से पीन सु ऐन।
कमल-पत्र से चारु ये, राधे जू के नैन।

अथवा।

मुखरित करता था सद्म को वह शुकों सा,
कलरव करता था, जो खगों सा वनों में।
सुध्वनित पिक लौं जो वाटिका था, बनाता,
वह बहु विधि कठों का, हा! विधाता कहां है?

(२) रसनोपमा।

कई एक उपमा अलंकारों की शृंखलाबद्ध श्रेणी को जिस में उपमेय उत्तरोत्तर उपमान होता चला जाय, रसनोपमा कहते हैं। यथाः—

शुभ-स्वरूप के सम सुमति, सुमति सरिस गुन ज्ञान।
सु गुन ज्ञान सम उद्यमहु, उद्यम से फल जान।

(२) लुप्तोपमा।

जहां उपमान, उपमेय, वाचक और धर्म इन चारों में से एक का, दो का अथवा तीनोंका लोप हो, उसे लुप्तोपमा कहते हैं।

उदाहरण	उपमान	वाचक	धर्म	उपमेय	नाम
कुन्द इन्दु सम देह	कुन्द इन्दु	सम	०	देह	धर्म लुप्तोपमा
नव अम्बुज अवक छवि नीकी,	नव अम्बुज	०	नीकी	अम्वक-छवि	वाचक-लुप्तोपमा
मृग-शावक-लोचनि,	मृग-शावक	०	०	लोचनि	वाचक धर्म-लुप्तोपमा
जूथ २ मिलि सुमुखि सुनयनी	०	०	०	सुनयनी	उपमानवाचक धर्म लुप्तोपमा

और भी देखिये।

वाचक लुप्तोपमा।

उदाहरणः—

(१) *नील सरोरुह श्याम, तरुन अरुन वारिज नयन।*

से, सो, इमि आदि वाचक का लोप है।

धर्म लुप्तोपमा।

(२) *अति प्रिय जिसको है वस्त्र पीला निराला।*
वह किशलय के से अंग वाला कहा है।

साधारण धर्म 'कोमल' का लोप हो गया है।

वाचक धर्म लुप्तोपमा।

(३) *रहहु भवन अस हृदय विचारी,*
चन्द्र-वदनि दुख कानन-भारी।

यहां 'चन्द्रवदनि' में वाचक 'इव' आदि, और साधारण धर्म 'उज्वल' आदि लुप्त हैं।

अनन्वयोपमा।

जिसकी उपमा उसीसे दी जावे, अर्थात् जहां उपमेय और उपमान दोनों एक ही हों वहां, अनन्वय अलंकार होता है। यथाः-

(१) राम से राम सियासी सिया, सिर मौर विरंचि विचारि सँवारे।

या

(२) लही न कतहु हारि हियमानी, इन सम ये उपमा उर आनी।

अथवा।

(३) अब यद्यपि दुर्बल आरत है, पर भारत के सम भारत है।

उपमेयोपमा।

जहां उपमेय और उपमान (एक दूसरे के उत्कर्ष के लिए, अथवा सादृश्य के अभाव के कारण) परस्पर उपमेय और उपमान हों, वहां उपमेयोपमालकार होता है। यथाः—

(१) भू पर भाउ महीपति को मन से कर औ कर से मन ऊंचो।

यहां कर और मन परस्पर उपमानोपमेय हैं।

प्रतीप।

जहां उपमेय और उपमान का प्रतीप अर्थात उलट फेर हो, वहां प्रतीप अलंकार होता है।

नोटः—प्रतीप शब्द का अर्थ है उलटा। यह उपमा के नियमों को उलट, पलट देता है, वहां उपमेय को उपमान के समान कहते हैं। और यहां ठीक उसके विपरीत उपमान को उपमेय कहते हैं। इससे उपमान का उत्कर्ष बढ़ जाता है। इसके ४ भेद हैं यथाः—

पहला प्रतीप।

जहां प्रसिद्ध उपमान उपमेय बना दिये जायं। यथा:—

उतरि नहाये जमुन-जल, जो शरीर सम श्याम।

अथवा।

सन्ध्या फूली परम-प्रिय की कान्ति सी है दिखाती,

मैं पाती हूं रजनि-तन को श्याम के रंग डूबा।

यहां यमुना-जल, संध्या, रजनी आदि प्रसिद्ध उपमानों को उपमेय बना डाला गया है।

दूसरा प्रतीप।

जहां उपमान से हीन उपमेय बनाया जाय। यथा:—

गरब करौ रघुनंदन जनि मांह,

देखो आपनि मूरति, सिय की छांह।

तीसरा प्रतीप।

जहां उपमान का उपमेय से अनादर किया जाय। यथा:—

मन्द लगत है काम, रघुनन्दन की छवि लखें।

यहां काम उपमान की रघुनन्दन की छवि से लघुता प्रकट की गई है।

चौथा प्रतीप।

जहां उपमेय की समता के योग्य उपमान न हो। यथा:—

(१) *जन्म सिन्धु पुनि बन्धु विष, दिन मलीन सकलंक।*

सिय-मुख समता पावै किमि, चन्द्र बापुरो रंक।

यहां सिय मुख उपमेय से चन्द्र उपमान की हीनता प्रकट की गई है।

पांचवा प्रतीप।

जहां उपमेय के सामने उपमान का व्यर्थ वर्णन किया जाय। यथाः—

कुन्द कहा पयवृन्द कहा अरु चन्द्र कहा सरजा जस आगे।

अथवा

कोटि काम उपमा लघु सोऊ।

रूपक।

जहां उपमान और उपमेय में कुछ भेद न वर्णन किया जाय वहां रूपकालंकार होता है।

इसके २ भेद हैं, (१) तद्रूप (२) अभेद।

(१) तद्रूप।

जहां उपमेय को उपमान मान कर फिर उसकी तुलना उपमान से करें वह तद्रूप रूपक है। यथाः—

विष वारुणी बन्धु प्रिय जेहीं, कहिय रमा सम किमि वैदेही।

यहां लक्ष्मी के विष और वारुणी वन्धु हैं, पर सीता के नहीं, ऐसा कह कर लक्ष्मी उपमान से सीता उपमेय का गुण वढ़ा दिया गया है। यह अधिक तद्रूप रूपक है।

अथवा

राम मात्र लघु नाम हमारा।

परशु सहित वड नाम तुम्हारा।

या

लखन उतर आहुति सरिस भृगुपति कोप कृशानु।

अभेद रूपक।

जहा उपमेय में उपमान से अधिक गुण आरोप करके भी एकरूपता स्थापित की जाय। यथा —

नव विधु विमल तात यश तोरा, रघुवर किंकर कुमुद चकोरा।
उदित सदा अथइहि कबहू ना, घटै न जग नभ दिन दिन दूना।

अथवा

तिहि निशि आश्रम पींजरा, राखे भा भिनसार।

उल्लेख।

किसी एक वस्तु का जहां बहुविधि वर्णन किया जाय, वहां उल्लेख अलंकार होता है। इसके २ भेद हैं।

प्रथम उल्लेख, जहां एकही वस्तु को अनेक मनुष्य अनेक प्रकार से वर्णन करें, यथाः—

कवि जन कलपद्रुम कहैं, ज्ञानी ज्ञान समुद्र।
दुरजन के जन कहत हैं, भावसिंह नर रुद्र।

द्वितीय उल्लेख, जहां एकही वस्तु विविध गुणों के कारण अनेक प्रकार से वर्णन की जाय। यथाः—

जय रघुवश बनज बन भानू,
गहन दनुज कुल दहन कृशानू।

स्मरण।

किसी को देखकर पूर्व में अनुभव की हुई या ज्ञातवस्तु का स्मरण हो आना 'स्मरण अलंकार कहलाता है यथाः—

(१) सघन कुञ्ज छाया सुखद, शीतल मंद समीर।
मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर।

(२) सिय मुख सरिस देखि सुख पावा।

भ्रान्ति।

भ्रम से किसी और वस्तु का औरही निश्चय कर लेना भ्रान्ति अलकार है। यथाः—

कपि करि हृदय विचार, दीन मुद्रिका डारि तव,
जानि अशोक अँगार, सीय हर्ष उठि कर गहेउ।

यहां मुद्रिका का अंगार भ्रम हो गया है।

अपह्नुति।

इसके ६ भेद होते हैं।

(१) शुद्धापह्नुति।

जहां उपमेय को असत्य ठहरा कर उपमान का सत्यता से स्थापन किया जाय, यथाः—

पहिरे श्याम न पीत पट, घन में विज्जु विलास।

अथवा

वन्धु न होय मोर यह काला।

यहा पीतपट और बन्धु उपमेयों को असत्य ठहरा कर विज्जु-विलास और काल उपमान को सत्य ठहराया गया है।

(२) हेतु अपह्नुति।

जहा युक्ति से किसी एक बातको छिपाकर दूसरी बात कही जाती है, वहां हेतु अपह्नुति होती है। यथा —

देखियत गगन प्रगट अगारा।

अवनि न आवत एकौ तारा।

यहा तारों को छिपाकर (चमकदार) होनें कारण अंगार कहा गया है।

(३) पर्यस्त अपह्नुति।

जहां किसी वस्तु को छिपाकर उसका धर्म किसी अन्य वस्तु में स्थापित किया जाय, यथाः—

मुकुट न होहिं भूप गुण चारी।

यहा मुकुटों को छिपा कर उसके स्थान पर चार गुणों का आरोप किया गया है।

(४) भ्रान्ति अपह्नुति।

जहा सच्ची बात कहकर दूसरे के चित्त का भ्रम मिटाया जाय, वहां भ्रांति अपह्नुति होती है।

आनन है अरविन्द न फूले।

अली गन भूले कहां मडरात है।

(५) छेकापह्नुति।

जहां किसी दूसरी बात की शंका करके सच्ची बात छिपाई जाय। वहां छेकापह्नुति होती है।

कछु न परिच्छा लीन गुसाईं।
कीन्ह प्रणाम तुम्हारेहि नाईं।

(६) कैतव अपह्नुति।

जहां कोई बात मिस, व्याज, या छल कपट आदि से छिपा दी जाती है, वहां कैतव अपह्नुति होती है। यथाः—

लखी नरेश बात सब सांची।
तिय मिस 'मीचु' सीस पर नाची।

यहां 'मिसु' शब्द के द्वारा स्त्री को मीचु कहा गया है।

उत्प्रेक्षा।

जहां दूसरी वस्तु में किसी अन्य वस्तु की संभावना की जाय, वहां उत्प्रेक्षालंकार होता है। इसके भेद तो कई हैं, पर हम ३ मुख्य भेदों का वर्णन करते हैं।

(१) वस्तूत्प्रेक्षा।

ऋषि न गौरि देखी तह कैसी,
मूरतिवंत तपस्या जैसी।

(२) हेतु उत्प्रेक्षा।

प्रभु कह गरल बधु ससिकेरा।
अति प्रिय निज उर-दीन्ह बसेरा।

(३) फलोत्प्रेक्षा।

जनु सब साचे हो न हित भये शकुन इक वार।

तुल्य-योगिता।

जहा अनेक उपमेय अथवा उपमानों का एकही धर्म कहा जाय, वहा तुल्ययोगिता अलंकार होता है, यथाः—

सिव सरजा भारी भुजन, भुव भरु धर्यो सभाग।
भूषन अब निहचिंत हैं, सेसनाग दिगनाग।

द्वितीय भेद।

जहा हित अनहित का समान व्यवहार वर्णन किया जाता है। वहा भी तुल्ययोगिता अलंकार होता है। यथाः—

जो सींचत काटत जुहै, जो पेरत जन कोइ।
जो रखत तिन सवन को, ऊख मीठि यै होइ।

दीपक।

जहां उपमेय और उपमानों का एक ही धर्म वर्णन किया जाता है। वहां दीपकालंकार होता है। यथाः—

सुर सरिता सों सिंधु अरु, चंद्रिकाहि सों चन्द।
कीरति सों जसवत नृप, महिमा धरत अमद।

दृष्टान्त।

जहां उपमेय और उपमान दोनों वाक्यों का अर्थ विम्व प्रति विम्व भाव से किया जाता है। वहां दृष्टान्त अलंकार होता है। यथाः—

उभय बीच सिय सोहति कैसी, ब्रह्म जीव बिच माया जैसी।

अथवा।

मन मलीन तनु सुन्दर कैसे, विष रस भरा कनक घट जैसे।

निदर्शन।

जहां दो वाक्यों के अर्थ में (भेद रहते हुए भी) सदृशता-सूचक ऐसा आरोप किया जाय कि, दोनों एक से जान पड़ें, वहां निदर्शन अलंकार होता है।

सन्त हंस गुण गहहिं पय. परि हरि वारि विकार।

या

मीठे वचन उदार के, सोने मांहि सुगन्ध।

व्यतिरेक।

जहां उपमान से उपमेय की उत्कृष्टता वर्णन की जाय, वहा व्यतिरेक अलङ्कार होता है। यथा,—

निज परिताप द्रवहिं नवनीता, पर दुख द्रवहिं सु सन्त पुनीता।

श्लेष।

एक ही पद से जहां अनेक अर्थ निकलें, उसे श्लेष कहते हैं। यथाः—

चरण धरत चिन्ता करत, भावत नींद न शोर।*

सुवरण† को ढूंढत फिरत, कवि भावुक अरु चोर।

---

*कविपक्षमें पद-योजना, भावुक और चोर पक्ष में पग-रखना।
†उत्तम अक्षर, सुन्दर रंग, सोना।

पर्यायोक्ति।

जहा व्यङ्ग से अपना इच्छित अर्थ कहा जाय, वहां पर्यायोक्ति होती है। यथा —

धरी न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जिन राखा रघुबीर, ते उबरे तिहि काल में।

अथवा

लखन हृदय लालसा विशेखी, जाय जनक पुर आइय देखी।

व्याज स्तुति।

जहां स्तुति में निन्दा और निन्दा में स्तुति हो, उसे व्याज स्तुति कहते हैं। यथाः—

रवि निज उदय व्याज रघुराया।
प्रभु-प्रताप निज नृपन दिखाया।

अथवा

जाके बल लव लेश तें, जितउ चराचर भारि।
तासु दूत मैं जासु तुम, हरि आनेहु प्रिय नारि।

पुनः।

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की कारव।
तिन मँह रावण कौन तैं, सत्य कहहु तजि माख।

विरोधाभास।

विरोध न होने पर भी जहां विरोधसा प्रतीत हो, वहा विरोधाभास अलंकार होता है। यथाः—

तन्त्री नाद कवित्त रस, सरस राग रति-रंग।
अनबूड़े बूड़े तरे, जे बूडे सब अंग।

विभावना।

किसी कारण के विना ही कार्य होने के वर्णन को विभावना कहते हैं।

प्रथम।

विनु पद चलै सुनै विनु काना, कर विनु कर्म करै विधि नाना।
आनन रहित सकल रस-भोगी, विनु वाणी वक्ता वड जोगी।

इसके ५ भेद और भी हैं।

द्वितीय।

हेतु के अपूर्ण होने पर जहां कार्य का पूर्ण होना कहा जाय, वह दूसरा भेद है। यथाः—

काम कुसुम धनु शायक लीन्हें, सकल भुवन अपने वश कीन्हें।

तृतीय।

जहां प्रतिवंध होने पर भी कार्य का पूर्ण होना वर्णन किया जाय, वह तीसरा भेद है। यथाः—

नैना नेक न मानहीं, कितौ कहौ समुझाय।
ये मुंह जोर तुरंग लौं, ऐंचत हू चलि जांय।

चतुर्थ।

जहां अन्य कारण से अन्य कार्य हो, वह चौथा भेद है। यथाः—

क्या देखूंगी न अब कढता इन्दु को आलयों से।
क्या फूलेगा न अब गृह में पद्म सौन्दर्य शाली।

पञ्चम।

जहां कारण से कार्य उलटा कथन किया जाय, वह पांचवा भेद है। यथा—

जेहि तरु रहौं करत सोइ पीरा।
उरग-स्वास सम त्रिविध समीरा।

षष्ठ।

जहां कार्य से कारण की उत्पत्ति कही जाय, वह छठा भेद है। यथाः—

हाय उपाय न जाय कियो, ब्रज बूडत है बिनु पावस पानी।
धारन से असुवान की है, चख-मीनन ते सरिता सरसानी।

असम्भव।

जहा कोई अनहोनी बात प्रकट हुई सी जान पडे, वहा असम्भव अलंकार होता है। यथाः—

कँह कुभज कँह सिन्धु अपारा।

असंगति।

इसके ३ भेद होते हैं।

असंगति (प्रथम)।

जहा कारण कहीं और कार्य कहीं वर्णन किया गया हो। वहा असंगति अलंकार होता है। यथाः—

जिन वीथिन विहरैं सब भाई, थकित होंहि सब लोग लुगाई ।
पर हित हानि लाभ जिनकेरे, उजरे हर्ष विषाद घनेरे ।

असंगति (द्वितीय) ।

जहां और स्थान का कार्य अन्य स्थान में किया जाय, वहां भी असंगति अलंकार होता है । यथा —

पलनि पीक अञ्जन अधर, धरे महावर लाल ।
आज मिले सु भली करी, भले बने हौ लाल ।

असंगति (तृतीय) ।

जो कार्य करना हो उसे न कर दूसरा कर बैठना, तृतीय असंगति अलंकार है । यथाः—

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति ।
परति गाठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति ।

काव्य लिङ्ग ।

जहां युक्ति से अर्थ समर्थित हो, वहां काव्यलिङ्ग अलंकार होता है । यथा —

विश्व भरण पोषण कर जोई ।
तेहि कर नाम भरत अस होई ।

अथवा

तजि तीरथ हरि-राधिका, तन दुति करि अनुराग ।
जिहिं ब्रज केलि निकुंज मग, पग पग होत प्रयाग ।

अर्थान्तर न्यास ।

जहा सामान्य कथन विशेप कथन द्वारा, और विशेष कथन सामान्य कथन द्वारा पुष्ट किया जाय, वहा अर्थान्तरन्यास अलंकार होता है। यथा—

बडे न हूजै गुणन बिन, बिरद बडाई पाय । (सामान्य कथन)
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढो न जाय । (विशेष कथन)

अथवा

हरि प्रताप गोकुल बच्यो, (विशेष कथन)
का नहिं करहिं महान । (सामान्य वचन)

लेश ।

जहा दोष में गुण और गुण में दोप वर्णन किया जाय, वहा लेश अलङ्कार होता है। यथा—

दोपमें गुण ।

कोऊ बचत न सामुहें सरजा सों रन-साजि ।
भली करी पिय समर ते, जो तुम आयेहु भाजि ।

गुणमें दोष ।

शुक सारिका पढत जो नाहीं, तो कत परत पींजरन माही ।

व्याजोक्ति ।

जहा किसी खुलती हुई बात या वृत्तान्त के छिपानेकी इच्छा से कोई बहाने की बात कही जाती है, वहां व्याजोक्ति अलङ्कार होता है। यथा—

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू, भूप किशोर देखि किन लेहू।

अथवा

भूप प्रताप भानु अवनीसा, तासु सचिव मैं सुनहु मुनीशा।

गूढ़ोक्ति।

जहां और के मिस से और बात कही जाय, उसे गूढोक्ति कहते हैं। यथाः—

नहि पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकाश यहि काल।
अली कली ही सों विंध्यो, आगे कौन हवाल।

लोकोक्ति।

लोकमें जो कहावत प्रचलित है, उसे लोकोक्ति कहते हैं। यथाः—

वृथा मरहु जनि गाल बजाई, मन मोदकनि कि भूख बुझाई।

छेकोक्ति।

जहां लोकोक्ति साभिप्राय कथन की जाय, वहां छेकोक्ति अलङ्कार होता है। यथाः—

खग जानै खग ही की भाषा।
ताते उमा गुप्त करि राखा॥

अथवा

सत्य सराहि कहेउ वर देना।
जानेहु लेइहिं मांगि चबेना॥

---

* इस अलङ्कार में किसी प्रसंग के वर्णन सहित जब कोई कहावत कही जाती है तब लोकोक्ति अलङ्कार होता है। केवल लोकोक्ति कहने में कोई अलङ्कार नहीं होता।

वक्रोक्ति।

जहा श्लेष से और काकु से दूसरा अर्थ किया जाय, वहा वक्रोक्ति अलङ्कार होता है। यथाः—

मैं सुकुमारि नाथ बन योगू, तुमहिं उचित तप मो कँह भोगू।

अथवा

धर्म शीलता तुव जग जागी, पावा दरश हमहुँ बड भागी।

नव्य और प्राचीन अलंकार शास्त्रकारों के मत से अलंकारों की संख्यायें अनेक हैं। उन सब आचार्यों के मतों का दिग्दर्शन कराने के लिए भी कई पृष्ठों की आवश्यकता है। अतएव विस्तार भय से उनको छोड़ना पड रहा है। ऊपर जितने अलंकारों का वर्णन किया गया है, उनमें भी कइयों के भेद नहीं लिखे जा सके।

छंद परिचय।

लक्षण।

जिस वाक्य-रचना में मात्राओं की समान गिनती, लघु गुरु वर्णों का क्रम, विराम, और गति, आदि का नियम पाया जाय वह छन्द है। छन्द दो प्रकार के होते हैं, 'वैदिक' और "लौकिक" वेदों में जो छन्द आये हैं, वे वैदिक हैं। हम केवल लौकिक छन्दों काही वर्णन करेंगे।

नोट—शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कार के अतिरिक्त उभयालङ्कार भी होता है। उसकी पहिचान यह है, कि जिस पाद या वाक्य में एक से अधिक अलङ्कारों का समावेश हो, वही उभयालङ्कार है।

छन्दों के भेद।

छन्दों के मुख्य दो भेद हैं, मात्रिक और वर्णिक। प्रत्येक छन्द में चार पद, पाद या चरण होते हैं। किन्तु विषम छन्दों के लिए कोई नियम नहीं है। मात्रिक को 'जाति' और 'वर्णिक' को वृत्त, भी कहते हैं। इन दोनों भेदों के और तीन तीन साधारण भेद होते हैं। सम, अर्धसम और विषम। फिर सम के दो और भेद होते हैं—साधारण और दण्डक।
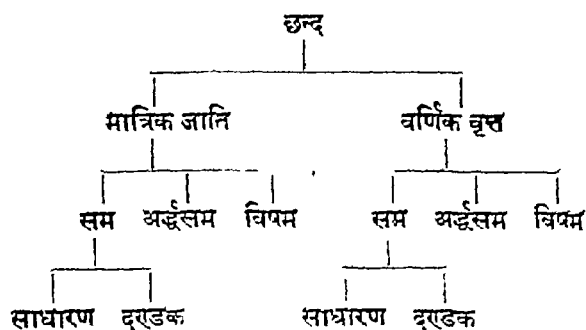
मात्रिक छन्द।

मात्रिक छन्द वह है जिसके प्रत्येक पद में केवल मात्राओं की गिनती की जाय अक्षर चाहे कम हों या ज्यादा। जैसे—

देखन बाग कुंवर दोउ आये, वय किशोर सब भांति सुहाये।

एक सखी सिय संग बिहाई, गई रही देखन फुलवाई।

इस छन्द के प्रत्येक पद में सोलह सोलह मात्रायें हैं। वर्णों की संख्या घट बढ़ कर हो सकती है।

वर्णिक वृत्त।

वर्णिक, वह है, जिसके चारों चरणों में लघु गुरु का क्रम-भङ्ग न हो।

जय राम सदा सुख धाम हरे, रघुनायक शायक चाप धरे।
भव वारण दारुण सिंह प्रभो, गुण सागर नागर नाथ विभो।

मात्रिक और वर्णिक के उपभेद।

सम—जिसके चारों चरण समान हों, जैसे चौपाई, सवैया तोटक आदि।

अर्ध सम—जिसके पहले तीसरे और दूसरे चौथे चरण में समानता हो।

विषम—जिसके चरण समान न हों, जैसे "आर्या, छन्द।

साधारण—मात्रिक में प्रति चरण ३२ मात्राओं तक के जो छन्द हैं, और वर्णिक में जो २६ वर्ण तक हैं, वे 'साधारण' हैं।

दण्डक—जो साधारण की सीमा से आगे बढ़ जाय। (३२ मात्रा, या २६ वर्ण से अधिक हों) वह दण्डक कहलाता है।

लघु और गुरु।

अक्षर तीन प्रकार के होते हैं, लघु, गुरु, प्लुत। प्लुत का प्रयोग वेद मंत्रों और सगीत शास्त्रमें हुआ करता है। लघु और गुरु का नाम ह्रस्व और दीर्घ भी है, किन्तु पिंगल में इनको गुरु और लघु ही कहा जाता है। लघु का अर्थ है छोटा और गुरु

का अर्थ है बड़ा। अक्षरों के उच्चारण करने में जो समय लगता है, उसे मात्रा कहते हैं।

(१) जिस वर्ण के उच्चारण मे अधिक समय लगे, वह गुरु समझा जाता है।

लघु	गुरु
अ० इ० उ०,	आ० ई० ऊ० ए० ऐ० ओ० औ० अं० अ:०

अकेले व्यंजन वर्णों मे कोई लघु या गुरु नहीं होता। वह लघु या गुरु जैसे स्वर के साथ आयेगा, वैसा ही बन जायगा।

शब्द के अन्त अथवा मध्य मे जब संयुक्त (मिला हुआ) अक्षर आता है, तो वह अपने से पूर्व अक्षर को गुरु कर देता है। जैसे, सत्य, शुक्र, पिङ्गल, मत्त आदि।

(३) जिस वर्ण परअनु स्वार हो वह भी गुरु है, जैसे संत, हंस, चंद्र आदि।

(४) किन्तु जिस पर अर्धचन्द्र बिन्दी होगी, वह जैसा है वैसा ही रहेगा। अर्थात् लघु होगा तो लघु और दीर्घ होगा तो दीर्घ।

यथा०, जहाँ, तहाँ, हँस, फँस आदि।

(५) जिस वर्ण के आगे विसर्ग हो वह भी गुरु है; यथाः— दुःख, यहां 'दुः' गुरु है।

कोई २ पद के अन्तिमवर्ण को आवश्यकतानुसार गुरु मानते हैं। इसी तरह कभी कभी कवि-गण लघु को गुरु और गुरु को लघु छन्द की शुद्धता के लिए पढ़ लेते हैं। जैसे सीय की जगह सिय और हंस की जगह हंसा। गुरु का संकेत 'ऽ' और लघुका '।' है।

शुभाशुभ और दग्धाक्षर प्रकरण।

प्राचीन काव्याचार्योंने वर्णों को तीन भागों में विभक्त किया है, शुभ यथाः—क, ख, ग, घ, च, छ, ज, ड, द, न, य, श, स, क्ष और अ, आ, इ, ई, उ ऊ ए ऐ ओ औ अं अ। इनसे अतिरिक्त १६ वर्णों को अशुभमाना गया है। उनमें भी ५ अक्षर को दग्धाक्षर कहा जाता है, वे ये हैं "झ, ह, र, भ, ष" कविता के आदि में इनका प्रयोग वर्जनीय है। यदि इन शब्दों के बिना काम ही न चल सकता हो तो इन को दीर्घ कर दे, तो दोष मिट जाता है। अथवा देवता वाचक या मंगल वाचक कर दे।

जैसे 'रघुपति कर सन्देश अब सुनु जननी धरि धीर, या भरत नयन भुज दक्षिण फरकत वारहिं वार। यहां रकार और भकार दग्धाक्षरों में हैं, तथापि देवता-वाचक शब्द के साथ होने से अदूषित हैं।

प्रत्यय।

प्रत्यय शब्द का जो अर्थ है व्याकरण शास्त्र में, पिंगल में वह नहीं है। यहां यह एक पारिभाषिक शब्द मात्र है। प्रत्यय ६ हैं। इनके द्वारा छन्दों की संख्या, रूप, रूपान्तर आदि जाने जाते हैं।

(१) प्रस्तार। (२) सूची। (३) पाताल। (४) उद्दिष्ट। (५) नष्ट (६) मेरु। (७) खण्डमेरु (८) पताका। (९) मर्कटी।

इनमें सूची, प्रस्तार, नष्ट और उद्दिष्ट ये चार मुख्य हैं। शेष गौण। शिक्षार्थियों को इन से विशेष लाभ होने की सम्भावना नहीं है। अतएव, इनको छोड़े देते हैं।

गणा गण विचार ।

छन्द के आदि में अशुभ गण का प्रयोग करना बुरा है। किन्तु यह दोष केवल मात्रिक छन्दों में ही माना जाता है। वर्ण वृत्तों में नहीं। मात्रिक छन्दों में भी ईश्वर विषयक कविता में यह नियम न पालने से कोई हानि नहीं है।

गण-परिचय ।

प्रत्येक गण तीन अक्षरों का होता है। गण आठ होते हैं। गणके जानने के लिए प्रत्येक छंदके प्रत्येक चरण में उसके प्रथम अक्षर से गणना आरम्भ करना चाहिए। ३ अक्षर का गण होता है। इस हिसाब से गिनने के बाद अन्त में जो दो या एक अक्षर शेष बचे, उसको उसकी ध्वनि के अनुसार गुरु या लघु समझना चाहिए।

यति ।

प्रायः छन्दों के प्रत्येक पद का पाठ एक या अधिक स्थानो पर रुकता है। इसीको यति विराम या विश्राम कहते हैं। छन्दों में यति भग न होना चाहिए।

तुक ।

प्रत्येक छन्द के पादान्त में जो सम अक्षर होते हैं, वे 'तुक' कहलाते हैं। मात्रिक छन्दों में इसका प्रयोग अधिकतया होता है। तुक बन्दी में केवल अक्षर ही नहीं, प्रत्युत स्वर भी मिलने चाहिएं।

मात्रिक छन्द, सम।

(१) तोमर।

लक्षण—इस छन्द के प्रत्येक पद में १२ मात्रायें होती हैं। और अन्तमें क्रमशः गुरु और लघु होते हैं।

उदा०—तब चले बाण कराल, फुंकरत जनु बहु व्याल।
कोप्यो समर श्रीराम, चले विशिख निशित निकाम।

(२) सखी।

लक्षण—चौदह मात्रा का सखी छंद होता है, और अन्त 'यगण' होता है।

उदा०—यह बंचक राज पुजारी, वक वृत्ति महा व्यभिचारी।
फुसलाय सदा परदारा, गहि अंक सखी कर तारा।

(३) चौपई।

लक्षण—इस छंद के प्रत्येक पदमें १५ मात्रायें होती हैं। अन्त में क्रमशः गुरु और लघु होते हैं।

उदा०—राम रमापति तुम मम देव, नहिं प्रभु होत तुम्हारी सेव।
दीन दयानिधि भेद अभेव, मम दिशि देखो यह यश लेव।

(४) चौपाई।

लक्षण—प्रत्येक पदमें १६ मात्रायें हों, और अन्त में जगण अथवा तगण न हो।

उदा०—विधि हरि हर कवि-कोविद बानी,
कहत साधु महिमा सकुचानी।

सो मो सन कहि जात न कैसे,

शाक-वणिक मणि गुण गण जैसे।

(५) रोला।

लक्षण—प्रत्येक पदमें २४ मात्रायें हों, ११ और १३ पर विश्राम हो।

उदा०—मेरा विशद विचार भारती का मन्दिर है।

जिसमें वन्ध-विकार, कल्पना सा अस्थिर है॥

प्रतिभा का परिवार, उसीमें खेल रहा है।

अवनति को संसार, कूप में ठेल रहा है॥

(६) गीतिका।

लक्षण—प्रत्येक चरण में २६ मात्रायें होती हैं, १२ और १४ पर विश्राम होता है। और अन्त में क्रमश लघु और गुरु होता है।

उदा०—योग यज्ञ अनेक कर्मन, करि तुम्हें जे ध्यावहीं।

होय जाको भाय तैसो, तुमहिं ते फल पावहीं।

अति अगाध अपार तुवगति, पार काहू नहिं लह्यो।

शंभु शेष गणेश विधना, नेति निगमन हू कह्यो।

(७) सरसी।

लक्षण—प्रत्येक पदमें २७ मात्रायें होती हैं, १६ और ११ पर यति होती है। और अन्तमें गुरु और लघु होते हैं।

उदा०—काम, क्रोध. मद, लोभ, मोह की पँचरंगी कर दूर।
एक रंग तन मन वाणी में, भर ले तू भरपूर॥
प्रेम पसार न भूल भलाई, बैर विरोध बिसार।
भक्ति-भाव से भज शंकर को, दया धर्म उर धार।

(८) ललित पद।

लक्षण—प्रत्येक चरण मे १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रायें हों। और अन्तमें दो गुरु हो।

उदा०—प्रगटहु रविकुल-रवि निशि बीती, प्रजा कमल गन फूले।
मंद परे तारा रिपुगन सब, जन भय तम उनमूले।
नसे चोर लंपट खल लखि जग, तुव प्रताप प्रगटायो।
मागध बंदी सूत चिरैयन. मिलि कलरोर मचायो।

(६) हरि गीतिका।

लक्षण—प्रत्येक पदमे १६ और १२ के विश्राम से २८ मात्रायें, और अन्तमे क्रमश लघु और गुरु होते हैं।

उदा०—अज, अद्वितीय, अखंड अक्षर, अर्यमा अविकार है।
अभिराम अव्याहत अगोचर, अग्नि अखिलाधार है।
मनु, मुक्त, मंगल मूल मायिक, मान हीन, महेश है।
करतार! तारक है तुही यह, वेद का उपदेश है।

मात्रिक अर्द्ध सम।

(१) बरवै।

लक्षण—प्रथम और तृतीय पदोंमे प्रत्येकमे १२ और द्वितीय और

चतुर्थमें प्रत्येकमें ७ मात्रायें कुल ३८ मात्रायें हों। और अन्तमें जगण हो।

उदा०—वाम अंग शिव शोभित, शिवा उदार।
शरद सुवारिद में जनु तड़ित बिहार।

(२) दोहा।

लक्षण—विषम चरणों में १३ और सम चरणों ११ अर्थात् दो पदों मे कुल २४ मात्राये हों, आदि में जगण न हो और अन्तमें लघु हो।

उदा०—बंदौं संत समान चित, हित अनहित नहिं कोय।
अंजलि-गत शुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोय।

(३) सोरठा।

लक्षण—दोहा का उलटा सोरठा होता है। अर्थात् सम पदों में १३ और विषम पदों में ११ मात्रायें हों।

उदा०—मूक होइ वाचाल, पंगु चढै गिरिवर गहन।
जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमल दहन।

उल्लाला।

लक्षण—प्रथम और तृतीय पद मे १५और द्वितीय चतुर्थ मे १३, कुल २८ मात्रायें हों।

उदा०—हे शरण दायिनी देवि तू, करती सब का त्राण है।
हे मातृभूमि ! सन्तान हम तू जननी तू प्राण है।

मात्रिक विषम।

छप्पय।

लक्षण—छः पद और १४८ मात्राओं का छंद छप्पय होता है। प्रथम चार पद रोला के और शेष दो पद उल्लाला के।

उदा०—*प्रभो! पाप का पुञ्ज, कलह का कुञ्ज दूर हो।*
अवनीतल उत्साह, और सद्धर्म पूर हो।
रहे न निर्धन दीन, न भारत विषय चूर हो।
रहे सदा निर्भीक, यशी रणवीर शूर हो।
हे विश्वम्भर घर २ यहां, श्रुतियों के उच्चार हों।
उद्धार धर्म का हम करें, सच्चे आर्य कुमार हों।

वर्णिक छंद, सम।

(१) शालिनी।

लक्षण—प्रत्येक पदमें १ मगण और २ तगण हों, अन्तमें २ गुरु हों, और कुल ११ वर्ण हों इसमें चार और सात अक्षरों पर यति होती है।

उदा०—*बीथी बीथी, साधु को संग पैये,*
संगै संगै, कृष्ण की कीर्ति गैये।
गाये गाये, एकताई प्रकासे,
एकै एकै, सच्चिदानन्द भासै।

(२) भुजंगी।

लक्षण—प्रत्येक चरण में तीन यगण और एक २ लघु गुरु हों। कुल ग्यारह वर्ण हों।

उदा०—*समुत्थान का ज्ञान ही मूल है,*

इसे भूल जाना बड़ी भूल है।

सुशिक्षा जहा है वहीं सिद्धि है,

जहा सिद्धि होगी वहीं वृद्धि है।

(३) तोटक।

लक्षण०—प्रत्येक चरणमें चार 'सगण' हों, प्रत्येक चरणमें कुल १२ वर्ण हों।

उदा०—*जिसने गज-कुभ विदार करी,*

गज मोतिन से महि की अरचा।

निज विक्रम की किस भाति करे,

मृग सम्मुख सिंह वही चरचा।

(४) मोतिय दाम।

लक्षण—प्रत्येक चरण में चार जगण हों। प्रत्येक चरणमें १२ वर्ण हों।

उदा०—*ऊँचौ रघुनाथ धरे धनु हाथ,*

विराजत सानुज जानकि साथ।

सदा जिनके सुठि आठहु याम,

विराजत कठ सुमोतियदाम।

(५) इन्द्र वज्रा।

लक्षण—प्रत्येक चरण में दो तगण, एक 'जगण' और अन्तमें दो गुरु हों। प्रत्येक पद में कुल ११ वर्ण हों।

उदा०—ससार है एक अरण्य भारी, हुए जहां है हम मार्ग चारी।
जो कर्म रूपी न कुठार होगा, तो कौन निष्कटक पार होगा।

(६) उपेन्द्र वज्रा।

लक्षण—जगण, तगण, जगण और २ गुरु हों। प्रत्येक चरण में कुल ११ वर्ण होते हैं।

उदा०—बड़ा कि छोटा कुछ काम कीजे,
परन्तु पूर्वापर सोच लीजे।
विना विचारे यदि काम होगा,
कभी न अच्छा परिणाम होगा।

(७) वंशस्थ।

लक्षण—ज, त, ज, और र, का वंशस्थ वृत्त होता है। प्रत्येक चरणमें कुल १२ वर्ण होते हैं।

उदा०—प्रवाह होते तक शेष श्वास के,
सरक्त होते तक एक भी शिरा।
सशक्त होते तक एक लोम के,
लगा रहूंगा हित सर्व भूत में।

(८) भुजंग प्रयात।

लक्षण—प्रत्येक चरणमें चार यगण हों। प्रत्येक चरणमे कुल १२ वर्ण हों।

उदा०—तुझे बन्ध बाधा सताती नहीं है।
मुझे सर्वदा मुक्ति पाती नहीं है।

प्रभो शंकरानन्द आनन्द दाता,

मुझे क्यों नहीं आपदा से छुडाता ।

(९) वसन्त तिलका ।

लक्षण—प्रत्येक चरण में त, भ, ज, ज और अन्तमें २ गुरु हों।
प्रत्येक चरण में कुल १४ वर्ण हों।

उदा०—कुजें वही, थल वही, यमुना वही है,
वेलें वही, वन वही, विटपी वही है ।
हैं पुष्प-पल्लव वही, ब्रज भी वही है,
ये किन्तु श्याम बिन हैं, न वही जनाते ।

(१०) मालिनी ।

लक्षण—प्रत्येक चरण में दो नगण, एक मगण और २ यगण हों,
और ८, ७ पर यति हो ।

उदा०—जग कर कितनी ही, रात मैंने विताई ।
यदि तनिक कुमारों, को हुई वेकली थी ।
यह हृदय हमारा, भग्न कैसे न होगा,
यदि कुछ दुख होगा, बालकों को हमारे ।

(११) शिखरिणी ।

लक्षण—प्रत्येक चरणमें य, म, न, स, भ और अन्तमें क्रमशः
लघु गुरु हों । ६ और ११ पर यति हो ।

उदा०—गजेन्द्रों के नाथ, क्षण भर यहा तू न रहरे ।
मदों से अन्धा हो, इस जटिल भूमें विपिन की ।

बड़े भारी भाटे, नखर नख से कुंभि-भ्रम से,
विदारे जो सोता है, गिरि गुहा में हरि वही।

(१२) मंदाक्रान्ता।

लक्षण—प्रत्येक चरणमें म, भ, न, त, त और २ गुरु हों। ४, ६ और ७ अक्षरों पर यति हो।

उदा०—मेधा-देवी, विकल जन थी, भारती रो रही थी।
गोरक्षा को, वधिक वलकी, क्रूरता खो रही थी।
कंगाली के, मलिन मुख को, श्री नहीं धो रही थी।
बोलो भाई, तब न किसकी, सभ्यता सो रही थी।

(१३) द्रुत विलम्बित।

ल०—प्रत्येक चरण में न, भ, म और र हो।

उदा०—विपद सकुल विश्व प्रपञ्च है, वहु छिपा भवितव्य रहस्य है।
प्रति घटी पल संशय प्राप्त है, शिथिलता इस हेतु अश्रेय है।

(१४) सवैया।

ल०—जिन वृत्तों के चारों चरणों के अंत्याक्षर एक से होते हैं, उन्हें सवैया कहते हैं। इसके बहुत भेद होते हैं। हम यहां २ भेद लिखते हैं।

(१) किरीट।

ल०—आठ भगण का किरीट सवैया होता है।

उदा०—हे करतार विनै सुनो दास की,
लोकन को अवतार कस्यो जनि।

लोकन को अवतार कस्यो तो,

मनुष्यन को तौ सवार कस्यो जनि।

मानुपहू को सवार कस्यो तो,

तिन्हे बिच प्रेम पसार कस्यो जनि।

प्रेम पसार कस्यो तो दयानिधि,

के हूं वियोग विचार कस्यो जनि।

(२) मत्तगयंद या मालती।

लक्षण—प्रत्येक चरण में ७ भगण और अंतमें २ गुरु हों।

उदा०—यालकुटी अरु कामरिया पर राजतिहू पुरको तजि डारौं।

आठहु सिद्धि नवो निधि को सुख नद की गाय चराय विसारौं।

नैनन सों रसखानि कबौं, ब्रज के वन बाग तडाग निहारौं।

कोटिन हू कल धौत के धाम, करील के कुंजन ऊपर बारौं।

वर्णिक दण्डक—कवित्त।

जिन दंडकों के चारों पदों के अंत्याक्षर एक से होते हैं, उन्हें कवित्त कहते हैं।

मनहरण कवित्त।

लक्षण—प्रत्येक चरण में ३१ अक्षर हों, और १६, १५ पर यति हो। अन्तमें गुरु हो।

उदा०—सुनिये विटप हम पुहुप तिहारे अहै, राखिहौं हमैं तो शोभा रावरी बढावैंगे। तजिहौ हरखि कै तौ विलग न मानैं कछू, जहां जहा जैहैं तहां दूनो जस गावैंगे। सुरन

चढ़ैंगे नर सिरन चढ़ैंगे फेरि, सुकवि अनीस हाथ हाथन बिकावैंगे। देश में रहैंगे परदेश में रहेंगे काहू, भेस में रहेंगे, तऊ रावरे कहावेंगे।

शब्द और उसकी शक्तियां।

शब्द तीन प्रकार के होते हैं:—

(१) वाचक, (२) लक्षक, (३) व्यञ्जक।

इन तीनों की शक्तियां भी तीन ही होती हैं।

(१) अभिधा, (२) लक्षणा, (३) व्यञ्जना।

और इन शक्तियों द्वारा शब्दों से उत्पन्न हुए अर्थ भी तीन प्रकार के हैं।

(१) वाच्य, (२) लक्ष्य, (३) व्यंग्य।

वाचक।

शब्द सुनते ही अर्थका ज्ञान होना वाचक का लक्षण है। यथा

जल संकोच विकल भइ मीना।

यहां जल सुनते ही एक ख़ास चीज (पानी) का ही ज्ञान हुआ है, अतएव जल वाचक हुआ, और जल में एक विशिष्ट अर्थ द्योतन की जो शक्ति है, उसका नाम अभिधा है। और जल का अर्थ 'पानी' वाच्य है।

अभिधा।

जिस शब्द के कई अर्थ होते हैं, उनमें अन्य अर्थों को छोड़ कर केवल एक मुख्यार्थ का ग्रहण करना 'अभिधा' शक्ति का लक्षण है। किस शब्द का कहां पर क्या अर्थ है, इसका निर्णय

संयोग, वियोग, अर्थ प्रकरण, प्रसग, देशबल और औचित्य आदि से किया जाता है। यथा:—

*हरि हित सहित राम जब जोहे।
रमा समेत रमापति मोहे।

यहां हरि शब्द के कई अर्थ हैं, किन्तु प्रसग से घोडा ही लिया जाता है।

लक्षक।

जिस शब्द से मुख्यार्थ से भिन्न अन्य अर्थ की प्रतीति हो। यथा:—

हिंसक जन्तु मध्य मम वासा।

यहां हिंसक शब्द वाचक है, तथापि हिंसक जीवों में मनुष्य का निवास असम्भव है, अतएव 'हिंसक जन्तु' के साहचर्य से सघन-वन प्रतीत हुआ। क्योंकि ऐसे ही स्थानों में हिंसक जन्तु रहते हैं। अतएव यहा हिंसक जन्तु 'लक्षक' है और 'सघन वन' की प्रतीति करने वाली जो शक्ति है, वह लक्षणा है। और 'सघन वन' अर्थ का प्रकट होना लक्ष्य है।

लक्षणा।

जहा शब्द के मुख्य अर्थ को छोड़ कर वाक्य की संगति बैठानेके लिए दूसरे अर्थ की कल्पना की जाती है, वहा लक्षणा शक्ति होती है। इसके भी अनेक भेद है। एक उदाहरण देखिए। यथा -

*सूर्य, चन्द्र, मयूर, विष्णु आदि।

फली सकल मनकामना, लूट्यो अगणित चैन।
आजु अचै हरि-रूप सखि, भये प्रफुल्लित नैन।

साधारणत लोकमें वृक्ष फलते हैं, कोई द्रव्य-वस्तु लूटी जाती है। जल का आचमन किया जाता है, और पुष्प वगैरह विकसित हुआ करते हैं। किन्तु ये सब शब्द अपनी लक्षणा शक्ति के कारण यहां भिन्न अर्थ प्रकट करते हैं। यहां मन कामना का फलना (पूर्ण होना) चैन का लूटना (उपभोग करना) हरि-रूप अचवँना (दर्शन करना) और नैन का प्रफुल्लित होना (देखना) कहा गया है।

व्यञ्जक।

वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ से भिन्न अधिक अर्थ या किसो अन्य अर्थ के बोधक को व्यञ्जक कहते हैं। यथाः—

मोर मनोरथ जानहु नीके, बसहु सदा उरपुर सबही के।

यहां 'सब' शब्द व्यञ्जक है। और अभीष्ट पूर्ण होना व्यंग्य है।

व्यञ्जना।

जिससे शब्द के वाच्यार्थ या लक्ष्यार्थ से भिन्न किसी विशेष अर्थ का बोध होता है, उसे व्यञ्जना कहते हैं। इसके भी अनेक भेद उपभेद हैं। यथाः—

मित्र तुम्हारे वदन पर, मूरखता दरसात।
मो मुख दर्पण विमल अति, आज विदित भो तात।

किसी ने किसी से कहा कि, मित्र तुम्हारे मुख पर मूर्खता झलक रही है, उसने उत्तर दिया कि मुझे आज ही मालूम हुआ कि मेरा मुख दर्पण है, जिसमें तुमने अपना प्रतिबिंब देख लिया। यहां व्यञ्जना शक्ति से यह अर्थ निकला कि मै नहीं तुम मूर्ख हो।

ध्वनि।

वाच्यार्थ से व्यंग्यार्थ में अधिक चमत्कार होना ध्वनि है। इसी को उत्तम काव्य भी कहते हैं। यथा:—

कह अंगद सलज्ज जगमाहीं।
रावण तोहि समान कोउ नाहीं।

इस वाक्य से यह ध्वनि निकली, कि तुम बड़े निर्लज्ज हो।

इसके दो भेद हैं। (१) अविवक्षित वाच्य ध्वनि, (२) विवक्षित वाच्य ध्वनि।

(१) अविवक्षित वाच्य ध्वनि।

जहा वक्ता की इच्छा न होते हुए भी स्वभाविक वाक्यों से ही व्यंग्य प्रकट हो। यथा:—

वाउ कृपा मूरति अनुकूला।
बोलत वचन झरत जनु फूला।

यहां अनुकूल-मूर्त्ति और फूल झरना आदि कहने से स्वाभाविक ही व्यग्य प्रकट होता है।

विवक्षित वाच्य ध्वनि।

जहां वक्ता की इच्छा से सहज ही व्यंग्य निकलता है। यथाः-

वर अनुहार बरात न भाई।

यहां वरके अनुरूप बारात का न होना व्यंग्य है।

अथवा

बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू।

तात्पर्य यह कि, पहले राम को देखलो, फिर गौरि का ध्यान करना।

गुणी भूत व्यंग्य (मध्यम काव्य)।

जहां व्यंग्य और वाच्य बराबर हो, उसे गुणी भूत व्यंग्य कहते हैं। यथा —

कहँ कुम्भज कँह सिन्धु अपारा, सोखेउ विदित सकल संसारा।

यहां कुम्भज ऋषि का तेज दिखाकर राम का तेज सूचित किया गया है। व्यंग्य वाच्य बराबर है।

ध्वनि के अनेक भेद हैं। उन सब को लिखने के लिए विस्तृत स्थान चाहिए। यहां उसका अभाव है, अतएव उससे निरस्त होते हैं। हां, यह कहना आवश्यक है, कि कविता में ध्वनि का प्रयोग जरूर करना चाहिए। चमत्कार-रहित कविता कविता नही, शब्दों का आडम्बर मात्र है।

गुण और दोष।

गुण।

शब्द के गुण तीन प्रकार के होते हैं, माधुर्य, ओज और प्रसाद

(१) माधुर्य।

माधुर्य गुण में टवर्ग के अतिरिक्त अन्य सब वर्णों का, तथा संयुक्त और सानुस्वार मधुर वर्णों का प्रयोग होना चाहिये। समस्त-पद कम होने चाहियें। शृङ्गार, हास्य, करुण और शान्त रसमें इसका प्रयोग होता है। यथाः—

जिहि रहीम तन मन दियो, कियो हिये विच भौन।
तासों दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन।

अथवा

धरे चन्द्रिका पख सिर, बसी पकज पानि।
नद नँदन खेलत सखी, वृन्दावन सुख दानि॥

(२) ओज।

ओज गुणमें उद्धत अक्षरों की अधिकता, कवर्ग और टवर्ग का बाहुल्य, और दीर्घ समासों की प्रधानता होती है। इस का प्रयोग वीर, अद्भुत, वीभत्स, भयानक और रौद्र रसमें किया जाता है। यथा —

मारु पछारु पुकारु दुहू दल, रुंड झपट्टि दपट्टि लपट्टत।

अथवा

देखत मदध दसकध अध धुध दल,
बन्धु सों बलकि बोल्यो राजाराम बरिबड।

(३) प्रसाद।

गति और यति की शुद्धता, मधुर वर्णोंका का, प्रयोग और पढ़ते ही अर्थ का समझ में आजाना आदि प्रसाद् गुणके लक्षण हैं। यथाः—

ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुण आगार।
किहिके लोभ विडम्बना, कीन्ह न यहि ससार॥

वृत्ति।

उपर्युक्तगुणों को उत्पन्नकरने के लिए शब्दों की बनावट के भी तीन प्रकार कहे गये हैं, जिन्हें वृत्ति कहते हैं। ये वृत्तियां गुणो के अनुसार ही तीन भागों में बंटी हुई हैं—

मधुरा, परुषा और प्रौढा।

रीति।

इन्ही गुणों के आधार पर वाक्य रचना की भी तीन रीतियां मान ली गई हैं। वैदर्भी, गौड़ी और पांचाली। माधुर्य गुणके लिए मधुरा वृत्ति और वैदर्भी रीति, ओज गुण के लिए परुषा वृत्ति और गौड़ी रीति, तथा प्रसाद् गुण के लिए प्रौढा वृत्ति और पांचाली रीति आवश्यक मानी गई हैं। वैदर्भी आदि नामकरण देश भेद से हुआ है।

दोष।

कविता को दोष-मुक्त रखना अत्यावश्यक है, प्रायः सब कवियों ने इनसे बचने का प्रयत्न किया है। कविता में निम्न लिखित दोष माने जाते हैं। यथाः—

अपार्थ, व्यर्थ, एकार्थ, ससंशय, अपक्रम, यतिभ्रष्ट, कर्णकटु, भिन्न-वृत्त, देश-विरोध, काल-विरोध, न्याय-विरोध, लोक-विरोध। इनके अतिरिक्त और भी बहुत से प्रबन्ध-दोष हो सकते हैं। क्रमसे इनकी संक्षेप में व्याख्या देखिए।

अपार्थ।

ल०—जिसका अर्थ न समझ पड़े, जो उन्मत्त या शिशु के प्रलाप तुल्य हो, उसे अपार्थ कहते हैं—

उदा०—*पिये लेत नर सिन्धु कँह, है अति सज्वर देह।*
ऐरावत हरि भावतो, देख्यो गर्जत मेह।

विशेष—यहा प्रत्येक पद में विभिन्न बातों का वर्णन किया गया है, किन्तु सम्पूर्ण पद्य का कोई अर्थ नहीं है। अतएव यह अपार्थ दोष है।

व्यर्थ।

ल०—एक ही पद्यमें जहा पूर्वापर विरोध हो, वहा व्यर्थ नामक दोष होता है।

उदा०—*जीतहु रिपु संग्राम में, कोउ न तुम्हारो शत्रु।*

वि०—यहां पहले रिपुओं को युद्ध में जीतने के लिए कह कर बाद को शत्रुका अभाव बतलाया गया है।

एकार्थ।

ल०—जहां एकही बात विना किसी विशेषता के दुहराई जाय, वहां एकार्थ दोष होता है।

उदा०—*मघवा घन आरूढ, इन्द्र आजु अति सोहिये।*
ब्रज पर कोप्यो मूढ, मेघ दसौ दिसि देखिये॥

वि०—यहां एकार्थ वाचक मघवा और इन्द्र, तथा घन और मेघ की विना किसी विशेषता के पुनरुक्ति की गई है।

ससंशय।

लक्षण—किसी प्रश्नके उत्तर में जो द्वयर्थक बात कही जाती है, वह यदि जान बूझ कर कही जाय तो गुण, अन्यथा दोषों में गिनी जाती है। और उसीको ससंशय कहते हैं।

उदा०—*जननी तरु के ओट में, करौ न ऐसो काज।*

वि०—यहां न, शब्द का प्रयोग भ्रम युक्त है। 'न' निषेधार्थक भी है। और जोर देनेके लिए भी कहते हैं। जैसे, आइये न।

अपक्रम या क्रम हीन।

लक्षण—क्रम की रक्षा का न होना अपक्रम दोष है।

उदा०—*जग की रचना कहि कौन करी,*
केहि राखन की जिय पैज धरी।
अति कोपिकैक कौन सहार करै,
हरि जू, हरजू विधि बुद्धि रै॥

वि०—यहां स्थिति, निर्माण और संहार के कारण यथा क्रम ब्रह्मा, विष्णु और महेश के न कहने से अपक्रम दोष हो गया है।

यति भंग।

लक्षण—पद्यमें नियत पद टूटने के स्थान को यति कहते हैं, यदि यह अनियमित हो, तो यति भंग या यति भ्रष्ट कहते हैं।

उदा०—हरि हर केशव मदन मो, हन घनश्याम सुजान।
ज्यों व्रज वासी द्वारका, नाथ रटत दिन-मान॥

वि०—दोहा में प्रथमार्द्ध पद में १३ तथा द्वितीयार्द्ध-पद में ११ मात्रायें होती है। जहां मात्रायें समाप्त हों, वहाँ पद भी समाप्त हो जाना चाहिए। उपर्युक्त दोहा में 'मो' और 'द्वारका' पर विराम होता है। यह यति भ्रष्ट दोष है।

कर्ण कटु।

लक्षण—जो कानों से सुनने में अच्छा न लगे, वह कर्ण-कटु है।

उदा०—लिया अनक चच्छुश्रवा, डसै परत हीं दृष्टि।

वि०—चच्छुश्रवा और दृष्टि कानों को खटकते हैं।

भिन्न-वृत्त।

लक्षण—नियम के विरुद्ध गुरु और लघु का ठीक २ प्रयोग न होना भिन्न-वृत्त नामक दोष कहलाता है।

उदा०—इन्दु किरण शीतल लगीं, चल्यो पवन अनुकूल।
शिव रिपु जब निज हाथ में, दौड़ि उठायो शूल।

वि०—यहां ऊपर के द्वितीय पद में १२ मात्रायें हैं, जो न होनी चाहिए थीं।

अनुचित प्रति-पादन।

इसके कई भेद हैं।

देश-विरोध।

उदा०—मलयानिल मन हरत हुठि, सुखद नर्मदा कूल।
सुवन सघन घनसार-मय, तरुवर तरल सुफूल॥

वि०—यहां नर्मदा तटपर चंदन वृक्ष आदि का वर्णन देश विरुद्ध है।

काल-विरोध।

लक्षण—समय के विरुद्ध वर्णन को काल-विरोध कहते हैं।

उदा०—*प्रफुलित नव नीरज रजनि, बासर कुमुद विसाल।*

कोकिल सरद मयूर मधु, बरषा मुदित मराल॥

वि०—यहां रात में कमल खिलना, और वर्षा में हंसों का मुदित होना आदि समय के विरुद्ध कहे गये हैं।

लोक-विरोध।

लक्षण—लोक की प्रत्यक्ष बातों के विरुद्ध वर्णन करना लोक-विरोध दोष कहलाता है।

उदा०—*गज के सोहत हैं जटा, घोड़े के द्वै सींग।*

वि०—यहां हाथी के जटा और घोड़े के सींग वर्णन करना लोक-विरोधहै।

न्याय-विरोध।

न्याय (हेतु विद्या) सम्बंधी दोष को न्याय विरोध कहते हैं।

उदा०—*पूजै तीनों वर्ण जग, करि विप्रन सों भेद।*

वि०—यहां विप्रों के अतिरिक्त तीनों वर्णों का पूजना न्याय विरोध है। इत्यादि।

तथा व्याकरण विरुद्ध आदि प्रयोग कविता में न होना चाहिए। वैसे तो दोषों की संख्यायें अनेक हैं, किन्तु यहां संक्षेप में उनका दिग्दर्शन मात्र कराया गया है।

समाप्त

———